નર્મદા

૨

नर्मदा घाटी में बनने जा रहे बाँधों को लेकर पिछले सितम्बर से जो थोड़ी-बहुत बातचीत, छोटी-छोटी गोष्ठियाँ हुईं और इधर-उधर अखबारों में जो कुछ छपा है, उसे देखकर कहा जा सकता है कि इस बारे में अब तक छाया सन्नाटा कुछ टूटा है। जो सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाएँ, विशेषज्ञ, पत्रिकाएँ और अखबार अब तक इस सारे मामले को केवल पानी और बिजली के बँटवारे की तरह ले रहे थे, अब वे इसके ऐसे हिस्से पर भी सोचने लगे हैं, जिसे पर्यावरण कहा जा रहा है।

इस बीच मध्यप्रदेश शासन ने नर्मदा घाटी के लोगों से बड़ी विनम्रता के साथ आग्रह किया है कि वे इन बड़े बाँधों को ठुकराएँ नहीं। यह भी कहा है कि निमाड़ की जनता ही फैसला करे कि ये बाँध बनें या न बनें। यों इन बाँधों को बनाने की पूरी तैयारी हो चुकने के बाद यह निर्णय लोगों

के हाथ में सौंपना कितना ठीक है, यह एक अलग सवाल है। उन लोगों से, जिनके विकास के लिए यह सब हो रहा है, ऐसा सवाल पूछा जाना बहुत ही स्वस्थ परम्परा होती, अगर यह सवाल कोई 30 साल पहले पूछा जाता, जब इन बाँधों के सपने बाँधे जा रहे थे।

एक राय यह भी सामने आयी है कि पर्यावरण के नाम पर विकास की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती, पर्यावरण के सेमिनारों और भाषणों से गरीब का पेट नहीं भरेगा, गरीब को तो पहले रोटी चाहिए।

ऐसी रोटी की चिन्ता, जिसे गरीब खरीद सके, अगर नर्मदा के बाँधों की बहस का केन्द्र बनती है, तो पर्यावरण वालों को अपनी हार में भी जीत ही दिखनी चाहिए। लेकिन अभी तक बने बाँधों ने और विकास की अन्य योजनाओं ने ऐसी रोटी तो सेंकी नहीं है। इनने रही-सही रोटी को छीनने का ही काम किया है। ऐसा न होता तो इन्हीं योजनाकारों को 'गरीबी की रेखा' जैसे विचित्र शब्द न बनाने पड़ते। ऐसी हर योजना से उखड़ने वाले लोग आज इसी रेखा के नीचे सिर छिपा रहे हैं।

फिर भी इस विकास को लेकर कोई ठीक बहस नहीं उठ सकी है। नर्मदा के बाँधों के बारे में भी यही कड़वी सचाई है। उनको बनाने में आज अभी कोई रुकावट दिख रही है तो वह किसी ताकतवर बाँध-विरोधी आंदोलन के कारण नहीं है। मालवा-निमाड़ की जनता न तो इन बाँधों को 'ठुकरा' रही है, न इन पर कोई अन्तिम फैसला दे रही है। ये बाँध बनें या न बनें—यह व्यवस्था या अव्यवस्था सरकार के विभिन्न विभागों में, ढाँचों में अटकी पड़ी है। मध्यप्रदेश और गुजरात शासन को भी यह याद दिलाना अच्छा नहीं लग रहा है कि नर्मदा के बाँध केन्द्र सरकार के एक छोटे से मंत्रालय के कारण रुके पड़े हैं। वहाँ भी मुद्दा पर्यावरण का जरूर है पर पर्यावरण की वैसी चिन्ता सचमुच विकास की सरकारी चिन्ता से बहुत अलग है, यह नहीं कहा जा सकता। कहीं पर्यावरण के नाम पर विकास की बलि दी जायेगी तो कहीं विकास के नाम पर पर्यावरण की।

इसलिए ज्यादा अच्छा तो यही होगा कि सरकार पर्यावरण बनाम विकास की बात न उठाये। अपनी ही पिछली ठोकरों से कुछ सीखे। पिछले बाँधों से जो भी दावे और वायदे किये गये थे, उन्हें वह खुद जाँचे। 'नर्मदा' एक और दो में प्रकाशित सामग्री ऐसी ही ठोकरों से भरी पड़ी है।

इस 'नर्मदा' तीन में वर्णित उस अनिश्चय को भी सरकार खुद जाँचे, जिस अनिश्चय में, जिस अव्यवस्था में उसकी हर योजना—चाहे वह विकास की हो चाहे पर्यावरण की—न सिर्फ खुद डूबती है बल्कि अपने साथ लोगों को भी ले डूबती है, खासकर उन लोगों को, जिनकी रोटी की चिन्ता में यह सब किया जा रहा है।

पर्यावरण कक्ष,
गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

अनिश्चय का सागर : नर्मदा सागर

चंदन दत्ता

न जाने कब सामान बाँधना पड़े और डेरा उठाकर चल देना पड़े—मध्य प्रदेश के तीन जिलों के कई लोगों के सिर पर मँडरा रहा यह डर अब तो तीसरी पीढ़ी तक आ गया है।

खंडवा और हरसूद (खंडवा), हरदा (होशंगाबाद) तथा खातेगाँव (देवास) तहसीलों के लगभग 85,000 लोग पिछले 25-30 सालों से लगातार मानसिक तनाव और दुविधा की स्थिति में जी रहे हैं।

सबसे पहले 1956 में मध्य प्रदेश सरकार ने पुनासा गाँव के पास एक बाँध बनाने की योजना तैयार की थी। उसमें 913.48 वर्ग किलोमीटर भूमि डूबने वाली थी। तब से इस क्षेत्र के 255 गाँवों के लोग लगातार भयभीत हैं। बाँध अभी तक बना नहीं है। पर इस बीच डूब से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या 50,000 से लगभग 85,000 तक बढ़ गयी है। लागत खर्च भी बढ़कर 1400 करोड़ रुपये तक हो गया है।

60 के दशक से योजनाकार, प्रशासनिक और राजनैतिक लोग लगातार क्षेत्र का दौरा करते रहे हैं। बीच में 1969-79 के दौरान यह आवाजाही कुछ रुकी थी, जब नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण पानी के बँटबारे के बारे में विचार कर रहा था। 1979 में उसके अन्तिम निर्णय के बाद, राज्य सरकार ने परियोजना को हाथ में लेने का तय कर लिया। जगह-जगह कार्यालय बन गये। बाँध क्षेत्र में 'नर्मदा सागर' नाम से एक बड़ी कालोनी बनी।

भूमि अधिग्रहण कानून की धारा-4 के अधीन सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि अधिगृहीत करने का काम कई गाँवों में 1983 से जारी हो गया है। घर-घर का तफसील से सर्वेक्षण 1983 में पूरा हुआ। उस समय अधिकारियों ने गाँव वालों से कहा था कि उन्हें 1986 से अपने घर खाली करने होंगे। लेकिन 1986 में भी वे वहीं हैं। सरकार की ओर से भी कोई हलचल नहीं दिखाई दे रही है। लोग अपने मकानों में कुछ नया जोड़-तोड़ नहीं कर सकते, क्योंकि 1983 में तफसील से घर-घर के सर्वेक्षण के बाद सरकार लोगों को नयी संपत्ति जुटाने के लिए या नये निर्माण के लिए कोई मुआवजा देने वाली नहीं है। हरसूद में नगरपालिका लोगों को नये घर बना लेने की इजाजत जरूर दे रही है, लेकिन साफ बता देती है कि उसकी जिम्मेदारी उनकी अपनी होगी। डूब में आने वाले नये घरों का मुआवजा सरकार नहीं देगी।

इसी तरह कुछ बैंकों ने भी आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया है। भूमि विकास बैंक, हरसूद के एक कर्मचारी के अनुसार एन० ए० बी० ए० आर० डी० (नेशनल बैंक फॉर एग्री-कलचर एंड रूरल डेवलपमेंट) के कार्यालय से आदेश मिला है कि डूब में आने वाले क्षेत्र में आर्थिक मदद बंद कर दी जाय।

न तो लोग कुछ नया बना पा रहे हैं, मुआवजे के डर से, और न सरकार ही कुछ नया होने दे रही है अपनी ओर से। इस क्षेत्र में कोई नयी बुनियादी रचना खड़ी नहीं की गयी है। मध्य-प्रदेश के मुख्य शहरों से कोई सही संचार-सम्पर्क नहीं है। इस वर्ष जुलाई में हरसूद के निवासियों ने तीन दिन की भूख हड़ताल की। माँग थी कि इंदौर तक सीधी बस-सेवा चालू की जाय। हरसूद एक व्यापारिक केन्द्र है। सभी तरह की खरीद-बिक्री के लिए हरसूद वाले इंदौर पर निर्भर रहते हैं। अभी तक कोई सीधे सम्पर्क का साधन बना नहीं है। एक अस्थायी बस (गर्मी के दिनों में, दिन में तीन बार) बड़केश्वर से इंदौर जाती-आती है, लेकिन सड़क का बहुत-सा हिस्सा (25 कि० मी०) कच्चा है। इसीलिए पूरे साल बस नहीं चल सकती। यह इलाका नर्मदा सागर परियोजना के डूब में आने वाला है। इसलिए वहाँ पक्की सड़क कौन बनाये।

डूब में आने वाला 91,348 हेक्टेयर का यह भू-भाग सरकार द्वारा 'निष्प्रयोज्य' घोषित हो गया है। बेघर होने पर तो लोग संकट में पड़ेंगे ही, पर अभी से, बेघर होने से पहले ही वे बेहद परेशानी भोग रहे हैं। नर्मदा के पानी को लेकर लड़ रहे राज्यों के आपसी सभी विवाद 1979 में हल कर लिये गये। और तब आया वन संरक्षण कानून, 1980। नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण पिछले तीन साल से पर्यावरण तथा वन मंत्रालयों से इजाजत की प्रतीक्षा में है कि परियोजना को जारी करना है या बन्द करना। मंत्रालय से अभी हरी झंडी नहीं मिली है।

प्रभावित लोगों का वर्गीकरण

क्रम	जिला	तहसील	गाँव सं०	लोग अनु० जाति	अनु० जनजाति	कुल
1.	खंडवा	खंडवा	21	547	3353	6241
		हरसूद	146	10593	13099	71551
2.	देवास	कन्नौद	20	112	354	1418
		खातेगाँव	19	—	—	—
3.	होशंगाबाद	हरदा	48	180	847	1290
			254	11432	17653	80500

स्रोत : नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण

नर्मदा सागर परियोजना

1950 के बाद देश में बड़े पैमाने पर सिंचाई विकास कार्यक्रम शुरू किया गया। उसी दौर में नर्मदा नदी के विकास की भी एक महत्वाकाँक्षी योजना सामने आयी।

सितम्बर 1955 में इस सम्बन्ध में श्री ए० के० खोसला के नेतृत्व में बनी एक समिति से

मास्टर प्लान तैयार करने के लिए कुछ मार्ग-निर्देशक सुझाव देने को कहा गया। समिति ने बहु-उद्देशीय विकास योजनाओं का सुझाव दिया, जिनमें सिंचाई, बिजली, मछली-पालन और पर्यटन शामिल थे। ये सारी योजनाएँ मध्य प्रदेश सरकार ने बनवायीं।

1956 में अन्तर्राज्यीय जल-विवाद कानून बना, जिसके अधीन विभिन्न राज्यों से होकर गुजरने वाली नदियों के पानी के बँटवारे का एक फारमूला तय किया गया। नर्मदा के मामले में सम्बद्ध राज्यों को यह कानून मान्य नहीं था। उन्होंने उसकी वैधता को चुनौती दी। 1969 तक कानूनी झगड़े चलते रहे। इस अवधि में राज्य सरकार ने तफसीलवार योजना तैयार की। कई समितियों, आयोगों, मंत्रियों, अधिकारियों ने इस क्षेत्र का मुआयना किया। पर मामला जहाँ के तहाँ रहा।

गतिरोध दूर करने के लिए फिर भारत सरकार ने 1969 में, नर्मदा जल-विवाद न्यायाधिकरण' का गठन किया। न्यायाधिकरण ने प्राथमिक मुद्दों पर अपना पहला निर्णय, फरवरी 1972 में दिया। 22 जुलाई, 1972 को सम्बद्ध चारों—मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान—राज्यों के मुख्यमंत्रियों के बीच पानी के बँटवारे के बारे में एक सहमति हुई। इसमें ये बातें उन्होंने मानीं :

एक. नर्मदा से कुल 28 एम० ए० एफ०* पानी प्राप्त होगा,

दो. कुल पानी में से 0.25 एम० ए० एफ० महाराष्ट्र को और 0.50 राजस्थान को दिया जायेगा,

तीन. बचे 27.25 एम० ए० एफ० पानी में मध्य प्रदेश और गुजरात के हिस्से का निर्णय उक्त न्यायाधिकरण करेगा।

ध्यान देने की बात यह है कि दूसरे सिंचाई आयोग ने यद्यपि अपनी रिपोर्ट 1972 में ही पेश कर दी थी, फिर भी नर्मदा, गोदावरी और कृष्णा नदियों के पानी के बँटवारे के बारे में इन राज्यों के बीच चल रहे कानूनी विवादों में उसका ज़िक्र कहीं नहीं है।

दस साल तक कार्रवाई चलते रहने के बाद दिसम्बर 1979 में नर्मदा जल-विवाद न्यायाधिकरण ने अपना अन्तिम निर्णय दिया। उसने कहा कि 18.25 एम० ए० एफ० पानी मध्य प्रदेश को और 9.0 एम० ए० एफ० पानी गुजरात को मिले। न्यायाधिकरण ने और भी कई मुद्दों पर विस्तृत निर्णय दिये। उनमें कुछ प्रमुख ये हैं :

एक. गुजरात को सरदार सरोवर का आकार उतना ही रखना चाहिए, जिससे मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र की जमीन उसकी डूब में एक हद से ज्यादा न आने पाये।

दो. सरदार सरोवर से राजस्थान सीमा तक नर्मदा की प्रमुख नहर को जोड़ना जरूरी है।

तीन. परियोजना क्षेत्र के लोगों के पुनर्वास की समुचित व्यवस्था करनी होगी।

चार. नर्मदा सागर और सरदार सरोवर दोनों के निर्माणकाल में उचित सामंजस्य रखना होगा।

पाँच. नर्मदा सागर से गुजरात और महाराष्ट्र को नियमित पानी छोड़ने की ठीक व्यवस्था करनी होगी।

---

* मिलियन एकड़ फुट : दस लाख एकड़ में एक फुट ऊँचाई तक भरे हुए पानी की मात्रा।

मास्टर प्लान

मध्य प्रदेश में नर्मदा के जल संसाधन के विकास का एक मास्टर प्लान मध्य प्रदेश सरकार ने 1972 में प्रकाशित किया। यह मास्टर प्लान राज्य सरकार द्वारा नर्मदा जल-विवाद न्यायाधिकरण के सामने प्रस्तुत प्रमुख दस्तावेज था। मूल योजना नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर कुछ बाँध और जल-परियोजनाएँ बनाने की थी। नर्मदा को देश का चौथा बड़ा जल-स्रोत माना जाता है और यह भी कि इसके पानी का उपयोग बहुत कम किया गया है। नियंत्रित पानी को पनबिजली संयंत्रों से गुजरकर बिजली पैदा करने की और अनेक नहरों द्वारा दूर-दूर तक ले जाकर हजारों हेक्टेयर खेत को सींचने की योजना थी।

मास्टर प्लान के अनुसार 31 बड़ी परियोजनाएँ (21 सिंचाई की, 7 पनबिजली की और 3 बहुउद्देशीय), 450 मझोली और कोई 3000 छोटी योजनाएँ हाथ में लेनी थीं। बाद में बड़ी योजनाओं में से दो योजनाएँ रद्द कर दी गयीं।

नर्मदा सागर परियोजना (जिसका नया नाम अब इंदिरा सागर है) घाटी की सबसे बड़ी परियोजना है। नदी के उगमस्थल से 845 कि० मी० दूर पुनासा गाँव के पास, प्रखण्ड गाँव से 10 किलोमीटर तथा खंडवा से 75 किलोमीटर दूरी पर बाँध-स्थल का चयन किया गया है।

परियोजना की सक्षमता

बाँध बनाने की बात 50 के दशक में तय हुई, पर काम उसी समय शुरू नहीं हुआ। राज्यों के बीच नये-नये विवाद खड़ होते रहे। इनका हल 1979 में हो पाया। इस बीच परियोजना की सक्षमता के बारे में भी कई सवाल उठे।

मास्टर प्लान बना था 1972 में। वह 'केन्द्रीय जल और विद्युत आयोग' के दो दशकों तक किये गये तकनीकी परीक्षणों के आधार पर बना था। उसकी मूल कल्पना 1965 में बनी, उसी पुरानी तथा खोसला समिति की रिपोर्ट के अनुसार ही थी। फिर भी प्रमुख निर्णय, जैसे जलाशयों तथा पन-बिजलीघरों की जगह के बारे में, सही तकनीकी निर्देशों के आधार पर किये गये थे। दूसरी ओर, जलाशयों और बिजलीघरों के आकार तय करने में जो विश्लेषण-पद्धति अपनायी गयी, वह भी पिछले अनुभवों पर आधारित थी, अद्यतन तकनीक पर नहीं।

न्यायाधिकरण ने मध्य प्रदेश को उसकी कुल माँग का तीन-चौथाई ही पानी आबंटित किया, इस कारण, मिलने वाले पानी के ही बराबर उसे अपनी परियोजनाओं की संख्या और आकार में भी कमी करनी पड़ी।

अनुमान था कि नर्मदा का सालाना औसत प्रवाह 41 बी० एम^3 होगा। लेकिन निर्भर तो 75 प्रतिशत पर ही किया जा सकता है, इसलिए उसकी मात्रा 33.9 बी० एम^3 (यानी ऊपरी प्रवाह 22.5 और भूगत प्रवाह 11.4 बी० एम०^3) होगी। अध्ययन बताते हैं कि 90 प्रतिशत बहाव बरसात के महीनों में होता है। सालाना बारिश आमतौर पर पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती जाती है। इस सालाना जल-बहाव की मात्रा के बारे में कई लोगों ने संदेह व्यक्त किया है। उस क्षेत्र के ज्यादातर लोगों का कहना है कि हाल के सालों में इस इलाके में बारिश और नदी का प्रवाह—दोनों काफी घट गये हैं। मध्य प्रदेश सरकार के भूतपूर्व सिंचाई सचिव श्री आर० एल०

गुप्ता ने भी इसी तरह की शंका व्यक्त की है। बँगलौर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट के एक अध्ययन से मालूम होता है कि (पिछले 31 साल के हिसाब से) नदी में आज उतना पानी नहीं रहा, जितना दस साल पहले था। पहले माना गया था कि नर्मदा और उसकी उपनदियों में 34,540 एम० एम०^3 (28 एम० ए० एफ०) पानी है। पर वास्तव में अब केवल लगभग 28,370 एम० एम०^3 (23 एम० ए० एफ०) पानी है। इसलिए अगर नर्मदा सागर परियोजना को और दूसरी परियोजनाओं को भी सक्षम बनाना है तो उनके आकार को छोटा करना जरूरी होगा। इससे उनके कारण होने वाले दुष्प्रभाव भी कम हो सकेंगे।

लगता है इस नदी की जल-शास्त्रीय जटिलताओं का जरा भी ख्याल नहीं रखा गया है। जल-विज्ञानी बताते हैं कि कई जगह नदी तल में ऐसे दह बने हुए हैं, जहाँ नीचे से पानी आता है, तो कई जगह नदी का पानी जमीन के नीचे भी जा रहा है। नर्मदा नदी बड़ी दरार वाले इलाके से बहती है। यह दरार भारत को दो बिलकुल भिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र में बाँटती है। दरार वाले इलाकों में भूकंप की हमेशा सम्भावना रहती है। लोग कोयना भूकंप की भीषण घटना को अभी भूल नहीं पाये हैं। कोयना के अध्ययन से सिद्ध हुआ कि भू-गर्भ की विशिष्ट रचना के अलावा, भूकंप की सम्भावना के साथ जलाशयों का आकार, कितनी अवधि में उनमें पानी भरता रहता है, और कितनी गति से पानी भरता है आदि बातें भी जुड़ी रहती हैं। कलकत्ता विश्व-विद्यालय में भूकंप की भविष्यवाणी सम्बन्धी अध्ययन में लगे एक प्रोफेसर के अनुसार "नर्मदा घाटी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत थोड़े से इलाके में बहुत सारे जलाशय बनाने की योजना के कारण भूकंप की सम्भावना बढ़ गयी है।"

मध्य प्रदेश के भूतपूर्व पर्यावरण आयुक्त श्री एम० के० शर्मा का भी कहना है कि "यह सब जानते हैं कि नर्मदा घाटी बिखरे भू-खण्डों का इलाका है, इसलिए यहाँ जलाशयों के बनने से उनके परिणामस्वरूप भूकंप की समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।"

हाल के वर्षों में भूकंप-विज्ञानी जोर देने लगे हैं कि परियोजना की उपयोगिता का अध्ययन करने में भूकंप सम्बन्धी विषय का भी अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। नर्मदा सागर के लिए जगह का चुनाव 35 साल पहले किया गया था और तब भूकंप सम्बन्धी अध्ययन नहीं किया गया था।

इस बीच अनेक संगठनों ने भौगोलिक अध्ययन किये हैं। लेकिन उन संगठनों की रिपोर्टों को अधिकारियों ने प्रकाशित नहीं किया, किसी को दिखाया ही नहीं। बाँध क्षेत्र में नियुक्त इंजीनियर और भोपाल स्थित नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के अधिकारी कहते हैं कि वे सारे अध्ययन केन्द्र सरकार के संगठनों ने कराये हैं, जिनमें नेशनल जियोफिजिकल इंस्टीट्यूट भी शामिल है। बताया जा रहा है कि सर्वे करने वाले अपने सभी 'सैंपल' दिल्ली ले गये हैं। इसलिए मध्य प्रदेश के विभागों को, सिंचाई इंजीनियरों को कुछ मालूम नहीं है!

यों इन दिनों में भूकंप को रोकने वाली रचना का अध्ययन तेज किया गया है। लेकिन अभी कोई नहीं कह सकता कि किसी परियोजना के लिए भूकंप को ठीक से रोक सकने वाली भू-रचना कौन-सी होगी।

नर्मदा सागर परियोजना के अन्तर्गत 42,000 हेक्टेयर जंगल का इलाका डूब में आने वाला है। इनमें से 25,000 हेक्टेयर जमीन में उत्तम किस्म का प्राकृतिक जंगल है।

तफसीलवार परियोजना रिपोर्ट में और इजाजत के लिए योजना आयोग को पेश किये गये नोट में काफी फर्क है। लागत और लाभ वाले हिसाब में कई मुख्य अंशों को शामिल नहीं किया गया है। जैसे—जंगल उत्पाद की कीमत, जंगल से होनेवाली वार्षिक राजस्व की आय, वन संवर्धन का खर्च, आदि।

परियोजना से जुड़े बिजली वाले हिस्से को भी लागत और लाभ के हिसाब में शामिल नहीं किया गया है। वर्तमान अन्दाज के अनुसार परियोजना के कुल खर्च रुपये 1392.65 करोड़ में से बिजली विभाग का खर्च रु० 839.01 करोड़ और सिंचाई विभाग का खर्च रु० 436.80 करोड़ है।

नर्मदा सागर से बिजली उत्पादन की स्थापित क्षमता 1000 मेगावाट की मानी गयी है। लेकिन बिजलीघर के इंजीनियर औसत प्रत्यक्ष उत्पादन के बारे में कुछ ठीक-ठीक बताने में कतराते हैं। कुछ इंजीनियरों का अनुमान है कि औसत उत्पादन क्षमता 350 मेगावाट से ज्यादा नहीं होगी। नर्मदा सागर परियोजना के भूतपूर्व चीफ इंजीनियर श्री एन० बी० सेन ने भी एक लेख में लिखा है कि "शुरू में नर्मदा सागर से बिजली की पक्की प्राप्ति 212 मेगावाट की है।" बस।

अन्न उत्पादन में जो वृद्धि कूती गयी है और कृषि-उत्पादों का जो मूल्य माना गया है, उसमें भी तफसीलवार परियोजना रिपोर्ट के आँकड़ों में तथा योजना आयोग के सामने पेश किये गये नोट के आँकड़ों में पर्याप्त अन्तर है। मूल्य बढ़ भी सकता है, क्योंकि हो सकता है कि किसान सिंचाई सुविधा के कारण नकदी फसल पैदा करें।

आम तौर पर सिंचाई इंजीनियर एक नियम मानकर चलते हैं कि कुल डूब वाला इलाका कुल सिंचित इलाके के 10 प्रतिशत से ज्यादा न हो। लेकिन नर्मदा सागर परियोजना में डूब का इलाका 74 प्रतिशत है। डूब में आने वाला इलाका 91000 हेक्टेयर का है, जबकि कुल सिंचित क्षेत्र 123,000 हेक्टेयर है।

इस परियोजना के भूतपूर्व मुख्य इंजीनियर श्री एन० बी० सेन कहते हैं : "अनुमान लगाया गया था कि वर्तमान किस्म के बीजों से खाद्यान्न तथा दूसरी फसलों की पैदावार 18.7 लाख टन होगी। वादे के अनुसार सिंचाई सुविधा हो जाय और अधिक उपज वाले सुधरे बीज मिलें तो पैदावार ज्यादा हो सकती है। नर्मदा सागर परियोजना के सिंचाई वाले हिस्से का लागत लाभ का अनुपात, मान्य 1:50 के बजाय 1:88 और साथ में निवेश पर 10 प्रतिशत ब्याज जोड़कर बताया गया है। नर्मदा सागर परियोजना का प्रारूप इस हिसाब से बनाया गया है कि उससे 1.23 लाख हेक्टेयर जमीन की सिंचाई होगी और सिंचाई की घनता 128.5 प्रतिशत होगी। इस हिसाब से, संभव नहीं लगता कि लक्ष्यांक कभी प्राप्त हो सकता है क्योंकि 128.5 प्रतिशत सघनता सहित 1.23 हेक्टेयर = 1.58 हेक्टेयर। मान लें औसत उत्पादन 40 क्विंटल माना जाये तो कुल उत्पादन 6.32 लाख टन ही हुआ जो मूल लक्ष्य 18.7 लाख टन से बहुत ही कम है।

लागत-लाभ संबंधी अध्ययन पर आप ज्यादा जोर दें और परियोजना की सक्षमता पर शंका व्यक्त करने लगें तो नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के कई अधिकारी और अध्यक्ष तक कहने लगते हैं कि 'ये सभी परियोजनाएँ अन्योन्याश्रित हैं। बाकी को छोड़कर किसी एक ही के लागत-लाभ का हिसाब लगाना ठीक नहीं है।' अगर ऐसी बात है तो फिर इसी अकेली परियोजना

की तफसीलवार परियोजना-रिपोर्ट क्यों तैयार की गई? इसी एक परियोजना के लागत-लाभ का हिसाब योजना आयोग का क्यों दिया गया?

परियोजना की योजनानुसार हर साल उस जलाशय में 1500 टन मछली पैदा की जायगी। नदी में जहाज चलाने की सैद्धांतिक योजना भी तैयार की गयी है। लेकिन नर्मदा का पाट कई जगह बहुत सँकरा है। जलाशय (सरोवर) को छोड़कर शायद ही और कहीं जहाज चला सकने की स्थिति है। कोई बड़ा जहाज या लौंच सरोवर के मुहाने को पार कैसे कर सकेगा यह भी एक सवाल है। कुल मिलाकर जहाज चलाने की योजना बिना सोचे-समझे पेश की गयी मालूम होती है और आम आदमी की समझ से बाहर है।

जंगल की हानि

इस परियोजना में 42000 हेक्टेयर के करीब जंगल डूब में आने वाला है। परियोजना अधिकारियों का, यानी राज्य सरकार के सिंचाई विभाग का कहना है कि जंगल का कुछ हिस्सा जरूर डूबेगा, लेकिन उतने ही क्षेत्र में दूसरी जगह नया वन लगाया जायेगा। परियोजना (सिंचाई विभाग) के अधिकारी कुछ भी कहें, प्राकृतिक वन को काटकर उसके बदले पेड़ लगाने का सुझाव कोई सही उपाय नहीं है। नया वन लगाना प्राकृतिक वनों का विकल्प नहीं है। खुद श्रीमती गांधी ने परियोजना का शिलान्यास करते हुए 24 अक्तूबर, 1984 को कहा था, "मैं जंगलों को काटने और बड़े बाँध बनाने के पक्ष में नहीं हूँ।"

वन विभाग को लगता है कि नया वन लगाने में सबसे बड़ी अड़चन उसके लिए पर्याप्त जमीन का न होना है। कुछ समय पहले राजस्व विभाग और वन विभाग दोनों ने मिलकर डूब में आने वाले वन क्षेत्र के विकल्प के लिए जगह की तलाश करने का एक संयुक्त कार्यक्रम बनाया था। उन्हें इतनी बड़ी कोई जगह नहीं मिली। वन विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार "खंडवा और खरगौन जिलों में सिर्फ 700 हेक्टेयर राजस्व परती जमीन मिल सकती है। मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में कुल उपलब्ध राजस्व-भूमि सिर्फ 17000 हेक्टेयर है।" कुल मिलाकर डूबने वाले इतने बड़े वन क्षेत्र के आकार का कोई दूसरा भू-भाग मिलना मुश्किल है।

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख सामयिक ही होगा कि केन्द्रीय सरकार के अन्तरिक्ष विभाग ने उपग्रह छायाचित्रों से वनों के अध्ययन द्वारा अपनी एक रिपोर्ट में मध्य प्रदेश सरकार को चेतावनी भी दी है। 1984 की इस रिपोर्ट में कहा गया है कि ऐसी ही तीव्र गति से वन विनाश जारी रहने पर मध्य प्रदेश में अगले दस वर्षों में 'सम्पूर्ण पारिस्थिकीय विनाश' होगा, दुर्भाग्यवश जिन 29 जिलों में अंधाधुंध वन विनाश को देखा गया है, उनमें नर्मदा सागर बाँध की डूब में आने वाले तीनों जिले—खंडवा, होशंगाबाद, देवास—शामिल हैं।

यदि कहीं इतनी जमीन मिल भी जाये तो यह कहना मुश्किल है कि वहाँ पेड़ लगाये जा सकेंगे या नहीं। राजस्व परती जमीन की मिट्टी की ऊपरी सतह नष्ट हो चुकी है और उसमें भी बहुत से इलाकों को लोगों ने हथिया लिया है। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अधीन बेजमीन लोगों को परती जमीन बाँट दी गयी है और उन पर स्वामित्व का अधिकार देने वाले पट्टे भी जारी कर दिये गये हैं। ऐसी जमीन पर बबूल और दूसरे कँटीले पेड़ तो लगाये जा सकते हैं, लेकिन

ऊँचे बड़े पेड़ नहीं। एक वन अधिकारी के अनुसार "यह सूखा इलाका है। पानी की कमी है और यहाँ मिट्टी भी अच्छी नहीं है, इसलिए यहाँ पेड़ लगाना व्यर्थ है। पहले भी सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत लाखों रुपये खर्च किये गये, लेकिन कोई पेड़ बचा नहीं। न ठीक जमीन है, न पेड़ लग सकते हैं।"

यह जंगल सूखा पतझड़ी किस्म का है। सागौन की लकड़ी के लिए प्रसिद्ध है। जंगल की घनता 0.6 से 0.8 तक है जो बहुत अच्छी मानी जाती है। खंडवा जिले का यह हिस्सा जो डूब में आने वाला है, अत्युत्तम है। और अक्सर ऐसे वनों में लगने वाले कीड़ों से मुक्त भी है। 80-90 फीट ऊँचे सागौन यहाँ भरपूर हैं। मुख्य पेड़ हैं सरगन, सागौन, साजा, अंजन, धवड़ा, सलाई, बाँस, आदि। गौण वन उपजों में से मुख्य है—महुआ (बीज व फूल) गोंद, टमरू, चिरौंजी, आँवला शहद, वनौषधि, सागवान के पत्ते (छप्पर के लिए), नरकट (टोकरी के लिए), छींद (झाड़ू के लिए) आदि। तेंदू पत्तों के लिए भी यह जंगल बहुत प्रसिद्ध है।

यहाँ बहुत बढ़िया अंजन का जंगल है। एक खास तरह के वातावरण में पैदा होने वाला यह एक बढ़िया चारा है। यहाँ बारिश बहुत कम पड़ती है (25 इंच साल भर में)। गरमियों में जानवरों के चारे का यही एक सहारा है। यह धीरे-धीरे बढ़ता है। कृत्रिम रूप से इसे उगाना संभव नहीं है। एक गाँव वाले ने कहा कि "अंजन का झाड़ दूसरे पेड़ों की तरह नहीं है। इसे लगाकर पैदा नहीं कर सकते।"

डूब में आने वाले क्षेत्र में कोई 2 लाख पशु हैं। चराई का संकट हर वर्ष बढ़ता जा रहा है। बारिश के मौसम में खंडवा, देवास, होशंगाबाद जिलों से भी जानवर यहाँ आते हैं और चार महीने यहीं रहते हैं। यह इलाका जब डूब जायेगा तो इतने सारे पशुओं को चराने की एक नई समस्या खड़ी होगी।

पास के शहरों को—इंदौर, खंडवा, देवास, होशंगाबाद आदि को, जलावन की लकड़ी इसी जंगल से जाती है। इसके डूबने से ईंधन की कमी पड़ेगी और बचे जंगलों पर बोझ बढ़ेगा।

इस जंगल में तेंदू पत्ती भी खूब मिलती है। केवल तेंदू पत्ती से ही वन विभाग को सालाना एक करोड़ रुपये का राजस्व मिलता है। डूब में आनेवाले हिस्से में तेंदू राजस्व की हानि लगभग 30 लाख रुपयों की होगी। जहाँ ग्रामोद्योग छिन गये हों वहाँ स्थानीय लोगों की आर्थिक स्थिति में तेंदू पत्तों के 'महत्व' को समझा जा सकता है। इसका अंदाज इसी बात से लग सकता है कि अकेले बालदी क्षेत्र में ही, मई के दूसरे सप्ताह से जून के तीसरे सप्ताह तक, तेंदू पत्ते जमा करने वालों को मजदूरी के रूप में लगभग 6 लाख रुपये दिये जाते हैं। सिर्फ खंडवा संभाग में ही वन विभाग सीधे 157,000 कार्यदिवस के बराबर रोजगार देता है। डूब क्षेत्र में रोजगार देने की क्षमता लगभग 78,000 कार्यदिवस होने का अनुमान है। इसी संभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार, इस एक ही संभाग से कुल 10-12 करोड़ रुपये का राजस्व कमाया जाता है। डूब क्षेत्र का राजस्व लगभग 3 करोड़ होगा ऐसा अंदाज है। कुल मिलाकर वन विभाग को इस डूब के कारण सालाना लगभग 5 करोड़ रुपयों की हानि होने वाली है।

बाँध से लाभ के दावे कोई कम नहीं गिनाये जा रहे पर दूसरी तरफ हानि की सूची भी बहुत लंबी है। लोग, वन, और पशु व वन्य जीवन—किसका कष्ट किससे कम है—कैसे कहा जा सकता है? चंडीगढ़ और पास के कालीबीट इलाकों में बड़ी संख्या में जंगली जानवर हैं। सदियों से

निरापद जीवन जीते आये इन प्राणियों के 'पुनर्वास' की चिंता किसे होगी ?

डूबने वाला क्षेत्र

(हेक्टरों में)

जिला	रेंज	आरक्षित वन	सुरक्षित वन	कुल
खंडवा	मूंडी	8504.497	115.080	8619.577
	बालदी	6075.882	3043.757	9119.639
	सिंगाजी	2891.419	—	2891.419
	चंडीगढ़	3220.179	4269.236	7489.415
हरदा	हरदा	187.690	3040.111	3227.801
देवास	सतवास	3977.394	—	3977.394
		24857.061	10458.184	35325.724

स्रोत : खंडवा वन संभाग कार्यालय खंडवा ।

नोट : इसके अलावा खंडवा जिले का 5007 हेक्टयर अवर्गीकृत जगल भी डूबने वाला है । इसका स्वामित्व अभी तक राजस्व विभाग के पास ही है ।

क्षतिपूर्ति में वन लगाने का नाटक

वन विभाग के अधिकारी खुले तौर पर स्वीकार करते हैं कि प्राकृतिक वनों को काटने का उत्तर क्षतिपूर्ति के लिए लगाया जाने वाला वन हरगिज नहीं है। पास में कहीं जमीन ही नहीं है। नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के अधिकारी कहते हैं कि जो भी सरकारी राजस्व भूमि पड़ी हुई है वहाँ क्षतिपूर्ति का वृक्षारोपण करो। सरकारी नियमों के केवल अक्षरशः पालन करने का यह एक उदाहरण है।

बिलासपुर जिले में कुछ जमीन मिल सकती थी। यहाँ का वन डूबोने वाले सिंचाई विभाग ने वहाँ इतनी दूर वृक्षारोपण का सुझाव दिया था। लेकिन वन विभाग को वह मंजूर नहीं हुआ। उसका कहना था कि (1) हमारा अत्युत्तम वन क्षेत्र चला जाएगा और बदले में पेड़ लगाने के लिए घटिया जमीन हमें मिलेगी ; (2) पश्चिमी इलाके में जंगल काटना और पूर्वी इलाके में पेड़ लगाना पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से ठीक नहीं है ; (3) नयी जगह जंगल के जमने में कई पीढ़ियों का समय लगता है ; (4) बिलासपुर में पेड़ लगाने से समस्या हल नहीं होगी। पेड़ तो यहीं लगने चाहिए।

खराब जमीन में वृक्षारोपण

वन विभाग के कड़े विरोध के कारण दूर कहीं पेड़ लगाने का कार्यक्रम लगता है फिलहाल रद्द कर दिया गया है। हाल के महीनों में यह बात सामने आयी कि खराब जंगली इलाके में पेड़ लगाये जायें। मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने 8 जुलाई, 1986 को दिल्ली में

सिंचाई और जल संसाधन मंत्रियों के एक राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा था कि "जिन जंगलों में पेड़ काटे गये हैं वहीं क्षतिपूर्ति का वन-संवर्धन किया जाय और उसकी लागत को सिंचाई परियोजना की (जिसे पर्यावरण विभाग से अभी स्वीकृति मिलनी बाकी है) लागत में शामिल किया जाये।"

नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष श्री आर० एस० खन्ना ने (क्रमांक एन० वी० डी० ए०/फार/टी० 10दि० 5.7.86 के) एक पत्र में चीफ कनजर्वेटर ऑफ फारेस्टस (डेवलपमेंट), मध्य प्रदेश को लिखा, "पिछले सप्ताह दिल्ली प्रवास के दौरान, मैंने यह समझा कि भारत सरकार के वन और पर्यावरण मंत्रालय ने संकेत दिया है कि उपर्युक्त दोनों (सरदार सरोवर तथा नर्मदा सागर) परियोजनाओं को वन संरक्षण कानून, 1980 के तहत स्वीकृति दी जा सकती है बशर्ते राज्य सरकार खराब (आरक्षित तथा संरक्षित) 90000 हेक्टेयर वन में, और 12000 हेक्टेयर परती राजस्व भूमि में वन लगाने का काम हाथ में लें। परियोजना क्षेत्र के छह जिलों (खंडवा, खरगौन, धार, देवास, होशंगाबाद और सीहोर) में 19000 हेक्टेयर जमीन हमने खोज निकाली है। इनमें से चरागाह के लिए जरूरी जमीन छोड़ दें तो 12000 हेक्टेयर वन भूमि निकल सकती है। इसलिए यह तय कर लेने के बाद कि कहाँ-कहाँ वृक्षारोपण करना है, पुनर्वृक्षारोपण तथा वन-संवर्धन की योजना तैयार करना जरूरी मानते हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि समुचित कार्य योजना तैयार कराने का काम आप शीघ्र हाथ में लें। कहने की जरूरत नहीं कि कार्य योजना तैयार करने और वृक्ष लगाने का सारा खर्च नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण से किया जायेगा।"

इस पत्र की प्रतिलिपि सभी संभागीय वन अधिकारियों को भेजी गयी। वन वालों को यह ठीक नहीं लगा है। एक वरिष्ठ वन अधिकारी की बड़ी तीखी प्रतिक्रिया थी। उनके अनुसार यह जमीन बिल्कुल खराब है। कहीं तो मिट्टी खराब है, कहीं मौसम ठीक नहीं है। कहीं जमीन पर जनसंख्या का दबाव बढ़ गया है। इन मुद्दों की अनदेखी नहीं की जा सकती। इन इलाकों में पेड़ लगाते हैं तो कोई गारंटी नहीं कि वह वनभाग फिर खराब नहीं होगा।

कुछ राजस्वभूमि जरूर मिल सकती है, पर यह भी अच्छी नहीं है। खासकर खेती के लिए अयोग्य राजस्व भूमि ही है जिसे अतिरिक्त घोषित किया गया है। फिर राजस्व भूमि तो सिर्फ सरकारी कागजात में है, मौके पर जाकर जाँच करो तो पता चलता है कि वह सारी जमीन हथिया ली गयी है। जो बची रह गई, वह 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत बेजमीनों को बाँट दी गई है।

फिर राजस्व भूमि पर पेड़ लगाने पर कुछ पाबंदियाँ हैं। जंगली इलाके में जानवरों को नहीं जाना चाहिए, उस जमीन पर गैर कानूनी कब्जा नहीं होना चाहिए, आदि। लेकिन इन नियमों का पालन शायद ही होता है। केन्द्र सरकार ने सूचना दे रखी है कि जंगली भूमि में, वृक्षारोपण क्षेत्रों में चराई बिलकुल बन्द करनी चाहिए, और साथ ही यह भी कि स्थानीय लोगों को किसी तरह की शिकायत का मौका नहीं दिया जाना चाहिए। एक वन अधिकारी के शब्दों में "सचमुच यह ऊपर के अधिकारियों की दोगली नीति का नमूना है।"

समन्वय की कमी

वन विभाग और नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं है। प्राधिकरण वन विभाग से सलाह-मशविरा नहीं लेता। अपनी ओर से निर्णय ले लेता है और सम्मति के लिए उन्हें वन विभाग के पास भेजता है। 1982 में सिर्फ एक बार बाँध की जगह पर एक उच्चस्तरीय बैठक हुई थी। चीफ इंजीनियर श्री एन० बी० सेन के नेतृत्व में 12 परियोजना अधिकारी और वन विभाग के 11 अधिकारी उसमें आये थे। चीफ कनजर्वेटर ऑफ फारेस्ट (डेवलपमेंट) श्री डी० जी० शर्मा भी उनमें थे। बैठक में कोई 50 निर्णय लिये गये, परन्तु बाद में एक पर भी अमल नहीं हुआ। न फिर दूसरी बैठक हुई।

बाँध के स्थान पर टाउनशिप के निर्माण के लिए पुनासा रेंज के कंपार्टमेंट नंबर 328, 321, 332 के आरक्षित वनभाग में से 826.316 हेक्टेयर जमीन 14 अप्रैल, 1966 को मध्य प्रदेश बिजली बोर्ड के नाम हस्तांतरित की गयी। आगे चलकर बिजली बोर्ड के सुपुर्द किये गये नर्मदा सागर परियोजना के काम सिंचाई विभाग के हवाले किये गये। सिंचाई विभाग के कार्यालय की इमारतें, अफसरों और श्रमिकों के लिए घर, रेस्ट-हाउस, वर्कशाप आदि बनाये गये।

13 दिसम्बर 1982 को, संभाग नं० 9 के कार्यपालन इंजीनियर ने टाउनशिप का विस्तार करने तथा दूसरे कामों के लिए 1243 हेक्टेयर जमीन और माँगी। इसमें हवाई पट्टी (13 हे०) कालोनी (583 हे०) बाँध क्षेत्र तथा काम की जगह (14 हे०), बाँध की जगह तक जोड़ सड़क तथा संचार लाईन (16 हे०) के लिए जगह शामिल थी। वन विभाग ने अभी तक इस मामले में अपना निर्णय जाहिर नहीं किया है, लेकिन बहुत सारा स्थान सिंचाई विभाग ने कब्जे में ले लिया है। सिंचाई विभाग पर आरोप है कि उसने बिना इजाजत के जंगल काट दिया, घने जंगल के बीच गैरकानूनी ढंग से सड़क बनायी। यानी सरकार का ही एक विभाग दूसरे विभाग के कानूनों को ताक पर रख रहा है।

सर्केश्वर घाट से बाँध के स्थान तक (30 किलोमीटर) रेत ढोने के लिए टेंडर मँगाये गये, लेकिन कोई सड़क नहीं बनायी गयी और पर्यावरण विभाग की अनुमति के बिना ही ठेका दे दिया गया। इसी प्रकार, बाँध की जगह का विधिवत् हस्तांतरित नहीं हुआ है, लेकिन सिंचाई विभाग ने नदी का रुख मोड़ने की सुरंग (डाईवर्शन) और बाँध की नींव के काम के लिए मेसर्स अक्वा टनल कम्पनी आफ इण्डिया का टेंडर मंजूर कर लिया। उनका पूरा स्टाफ पिछले चार साल से बिल्कुल खाली बैठा हुआ है। सिर्फ 1983-84 में उन्होंने बाँध की जगह नींव के स्थान पर 30 मीटर गहरे 3.5 मीटर व्यास के 6 खड्डे खोदे थे।

नदी के बायीं ओर, जो स्थान बिजलीघर के लिए अंकित है, अपेक्षाकृत अनछुआ जंगल है। वहाँ सिंचाई विभाग ने सड़क बनाना शुरू किया। पर वन विभाग और सिंचाई विभाग के बीच इस सड़क निर्माण को लेकर विवाद खड़ा हुआ और वन विभाग ने सिंचाई विभाग के कुछ यंत्र और औजार जब्त कर लिए। उन्हें ले जाकर पामाखेड़ी रेस्ट-हाउस में रखा। इन दोनों विभागों के निचले कर्मचारियों के बीच अक्सर मुठभेड़ हुआ करती है।

एक वन अफसर का कहना है कि "वे (सिंचाई विभाग वाले) मानते हैं कि किसी तरह

परियोजना चल निकले। हर हालत में वे इसे चालू करना चाहते हैं, क्योंकि सारा पैसा उसी विभाग ने लगाया है। सवाल यह है कि तुम से किसने कहा कि वन विभाग की मंजूरी मिलने से पहले पैसा लगाओ ? नर्मदा प्राधिकरण में ऊँची श्रेणी के अधिकारी हैं। वे खाली आदेश देते हैं। हमारी बात सुनते ही नहीं।" दुर्भाग्य की बात है कि दोनों विभागों के बीच समन्वय नहीं है। पर्यावरण पर बहुत बुरा असर हो रहा है। इस वक्त कह नहीं सकते कि आगे चलकर क्या-क्या नुकसान होंगे, पर जो यह सब सोच-समझ सकते हैं उनकी बात सुनी नहीं, उन्हें नजर अंदाज कर दिया गया।

राजनैतिक खेल

लगता है, राजनैतिक लोगों के लिए यह परियोजना शतरंज का खेल है। राज्यस्तर के कई राजनैतिक लोगों ने इस परियोजना पर अपनी राय जाहिर की है। कुछ लोग उसके पक्ष में हैं और कुछ विरोध में हैं। ये सब बिलकुल अपने राजनैतिक हित की दृष्टि से ही सोच रहे हैं। वे पर्यावरण क्षति पर या विस्थापित होने वाले लोगों के बारे में जरा भी चिंतित नहीं लगते। राज्य के चारों मुख्यमन्त्री (वर्तमान सहित) इस बारे में बिलकुल अलग-अलग राय के हैं। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि जो मुख्यमंत्री अक्तूबर 1984 में इस परियोजना के उद्घाटन के प्रमुख निमित्त थे, अब वे ही बांध के विरोध में चुपके-चुपके मदद दे रहे हैं। अगर वे अब परियोजना के खतरों को समझ गये हैं, तो पर्यावरण प्रेमियों को अच्छा ही लगेगा। वे चाहेंगे कि मंत्री महोदय अपना मत खुलकर साफ-साफ सामने रखें।

दूसरी ओर, वर्तमान मुख्यमंत्री बुरी तरह इस कोशिश में लगे हुए हैं कि किसी भी तरह परियोजना को स्वीकृति मिल जाये। ऐसा लगता है कि उन्हें स्वीकृति मिल जाती है तो यह उनकी अपनी जीत होगी। यह तो बिलकुल चुनाव में जीत हासिल करने जैसी बात है। सिंचाई मंत्रियों के सम्मेलन में स्वयं श्री मोतीलाल वोरा ने कहा, "इस सिंचाई परियोजना के लिए पहले राज्य को पर्याप्त धनराशि दी नहीं गयी। अब चालू 26 बड़े, 44 मझोले और 1676 छोटे बाँधों का काम पूरा करने के लिए इस वक्त उसे 6000 करोड़ रुपयों की जरूरत है, लेकिन सातवीं योजना में इसके लिए सिर्फ 1720 करोड़ रुपये रखे गये हैं।" यानी संसाधनों की दिक्कत वे समझ गये। इसके बावजूद राज्य सरकार ने नयी योजनाएँ बनायीं और मंजूरी के लिए केन्द्र के पास भेजीं। "इस वक्त 5 बड़ी, 10 मझोली और 112 छोटी सिंचाई परियोजनाएँ स्वीकृति की राह देख रही हैं लेकिन अब तक इन पर 112 करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके हैं।"

चूँकि सिंचाई राज्य का विषय है, इसलिए शासक दल हमेशा बिना ठीक पूर्व तैयारी के शक्यता का विचार किये बिना, और योजना आयोग की पूर्व-अनुमति प्राप्त किये बिना ही नयी-नयी योजनाएँ शुरू करने को उत्सुक रहता है। एक बार परियोजना का उद्घाटन हो जाय, तो फिर राज्य सरकार आराम से चलने लगती है। अपेक्षित गति से कार्यान्वयन नहीं होता। क्योंकि उसकी इच्छा ज्यादा-से-ज्यादा जितनी परियोजनाएँ चालू कर सकें उतनी चालू करने की होती है, थोड़ा काम लेकर उसे पूरा करने की नहीं। नतीजा यह होता है कि सीमित

संसाधन सब में थोड़ा-थोड़ा बँट जाता है और धनाभाव का संकट हर परियोजना के सामने बना रहता है।

केन्द्र सरकार राजनैतिक दबाव से झुक जाती है और योजनाओं को इजाजत दे देती है। बांध की जगह की हालत, क्षेत्र के लोगों को सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताएँ, और पर्यावरण से ज्यादा महत्व राजनैतिक पहलू को दिया जाता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे विधायक और सांसद अभी भी पर्यावरण के पहलुओं को ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं। यों 1982 में ही सांसदों को पर्यावरण संबंधी परिचय देने के लिए एक समिति बनायी गयी थी।

लागत में वृद्धि

60 के दशक के आरंभ में परियोजना की लागत का अंदाज कुछ एक करोड़ रुपयों का बना था। 1979 में जब नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण को आदेश मिला तब तक लागत 500 करोड़ रुपये की हो गयी। एक इंजीनियर ने बताया कि 1974 में यह 400 करोड़ रुपये की थी, पर आज वह 1500 करोड़ रुपये की हो गयी है। लेकिन ये सभी आँकड़े अनुमान ही हैं।

लागत और लाभ का अनुपात अनुकूल बनाये रखने के लिए अक्सर परियोजना के अधिकारी लाभांश खूब बढ़ाकर बताते हैं ताकि लागत से वह ज्यादा दीखे। नीचे दी गयी तालिका से ऐसी विसंगति का अंदाज लग सकेगा :

	अनुमानित लागत		सिंचाई	
	1982	1986	1982	1986
यूनिट 1 (बाँध)	345.37	472.3		
यूनिट 2 (नहर)	215.65	405.4	1.23 लाख हेक्टेयर	1.23 लाख हेक्टेयर
यूनिट 3 (बिजली)	359.88	515.1	(128.5% फसल की घनता)	(188% फसल की घनता)
	920.90	1392.8		

1982 के आँकड़े प्राधिकरण के पूर्व अध्यक्ष श्री एन० बी० सेन के लेख से लिये हैं और दूसरे 1986 के आँकड़े बाँध-स्थल के कार्यालय से। निर्माण की लागत में 90% की वृद्धि हुई और इसी अवधि में फसल की घनता के आँकड़े भी खूब बढ़े हैं। भला यह कैसे हो सकता है ?

समूचे नर्मदाथाल की भौगोलिक स्थिति लचीली है। खरगौन जिले के प्रस्तावित कमांड क्षेत्र में कई जगह छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। कहीं बंजर जमीन भी है, जहाँ खेती लायक मिट्टी की उप-जाऊ परत है ही नहीं। कई जगह पेड़ और जंगल हैं। मध्य प्रदेश राज्य सरकार के एक संगठन 'पर्यावरण आयोजन व समन्वय संस्थान' के वन संरक्षण सलाहकार डॉ० एस० डी० तिवारी का कहना है कि "जितने इलाके के सिंचित होने की बात कही जा रही है, उसमें से 50 प्रतिशत तो

भ्रमात्मक है, क्योंकि इस क्षेत्र की जमीन के बारे में पक्के तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता।"

नर्मदा घाटी की तवा परियोजना में भी 30.50 प्रतिशत क्षमता का ही उपयोग हो पाया है। यहाँ सन् 75 से सिंचाई शुरू हुई है। तब से पानी का जमाव, खारेपन आदि की समस्याएँ खड़ी हुई हैं। अधिकारी इस वक्त न तो इन प्रमुख समस्याओं पर ही ध्यान दे रहे हैं, और न इनसे बड़ी, महत्वपूर्ण समस्या—सिंचाई सुविधा के अधिकतम उपयोग के बारे में ही कुछ सोच पा रहे हैं।

इस सिंचाई योजना में पहाड़ी इलाके को पार करने की दृष्टि ले कुछ सुरंग बनाने का प्रावधान है। एक जगह पाइप के जरिये पानी को ऊँचे खींचकर फिर से सिंचाई करने का भी प्रावधान है। कह नहीं सकते कि यह सब कितना व्यावहारिक है और इसके लिए कौन-सी टेक्नोलॉजी काम में लेंगे? अधिकारी आम जनता के सामने महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के बारे में लम्बे-चौड़े वादे तो करते हैं लेकिन निर्माण प्रक्रिया की जानकारी देने से कतराते हैं। कई लोगों को लग रहा है कि निर्माण-कार्य विफल होने के कारण परियोजना स्थगित कर दी जायगी।

प्रस्तावित अधिकांश कमांड क्षेत्र की मिट्टी भी कई तरह की है—चिकनी, रेतीली, कपास लायक काली। काली मिट्टी की परत काफी मोटी है और उसमें से पानी आसानी से निकल नहीं सकता। इसलिए पानी नीचे तक रिसकर पहुँच नहीं पाता। नालियाँ अड़ जाती हैं और फिर पानी का जमाव होता है। फिर धीरे-धीरे दलदल बनता है। इंजीनियर यह दलील देने की कोशिश करते हैं कि कमांड क्षेत्र थोड़ा-सा नदी की ओर ढालू है, इसलिए पानी के जमाव का डर नहीं है। लेकिन बाहरी (कंटूर) मेड़ ठीक न हो तो भूक्षरण की मात्रा बढ़ने की आशंका है। अनुभव बताता है कि इन सिंचाई परियोजनाओं में खेतों की नालियों, मेड़ों आदि के निर्माण पर उतना ध्यान नहीं रहता है। कमांड क्षेत्र विकास प्राधिकरण इन सब छोटे-छोटे से दिखने वाले महत्वपूर्ण कामों को करने में असमर्थ है। तवा बाँध के क्षेत्र में वह इस जिम्मेदारी में बुरी तरह असफल हुआ ही है। अग र वह कुछ करना भी चाहे तो भी इस इलाके की भूगर्भीय स्थिति के कारण कई बाधाएँ खड़ी होंगी।

लोगों की दुर्दशा

पुनासा गाँव के पास नर्मदा नदी पर बाँध बनाने का विचार हरसूद और उसके आसपास के ७ गाँव वालों के लिए कोई नया नहीं है। आज के बुजुर्ग लोग अपने बचपन से इस बारे में सुनते आये हैं। नर्मदा सागर बाँध के लिए खोजबीन का काम सन् 1948 से चल रहा है। उन दिनों दो भू-वैज्ञानिकों श्री जे० बी० आडन और श्री सी० एस० चटर्जी ने "नर्मदा पर पुनासा तथा हिरनफाल बाँध क्षेत्र का भौगोलिक पुनर्विचार" नामक एक रिपोर्ट तैयार की थी।

हरसूद में सुरक्षा-दीवार पर विवाद

परियोजना की अनुकूलता की जाँच करने के लिए सन् 50 और 60 के बीच सर्वेक्षण किया गया। उससे लोग कुछ समय तक बड़े चिंतित रहे। डॉ० आई० जे० मेथवानी जैसे बुजुर्ग याद

करते हैं कि 60 के दशक के आरम्भ में गाँव वालों ने अधिकारियों का विरोध भी किया था। तत्कालीन सिंचाई मंत्री डॉ० के० एल० राव सन् 1965 में हरसूद और दूसरे स्थानों का दौरा करने आए थे। तब के मुख्यमंत्री श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र भी उनके साथ थे। उसी दौरान (खोसला समिति वाले) श्री ए० के० खोसला भी कई बार वहाँ गये थे। योजना के अनुसार बाँध बनने में पूरा हरसूद शहर डूबने वाला था। तब एक सुझाव यह भी था कि हरसूद शहर के बचाव के लिए एक सुरक्षा दीवार बनायी जाय या जलाशय का स्तर 850 फीट तक सीमित रखा जाय। लेकिन हरसूद निवासी सुरक्षा-दीवार खड़ी करने के खिलाफ थे। उनके दिमाग में, रानीपुरा गाँव में इसी तरह की एक असफल हो चुकी परियोजना की याद बिलकुल ताजी थी। यह गाँव चंबल बाँध में डूबने वाला था। उसे बचाने के लिए उस गाँव के किनारे सुरक्षा-दीवार बनायी गयी थी। लेकिन पानी के जमाव के कारण सारा गाँव तबाह हो गया। शायद इन्हीं कड़वे अनुभवों के कारण 29 सितम्बर, 63 को हरसूद के सरकारी अस्पताल के सामने "पुनासा बाँध और हरसूद के भविष्य" पर विचार करने के लिए एक सभा की गयी। डॉ० के० एल० राव के दौरे से ठीक पहले हरसूद के लोगों ने श्री राव को एक तार भी भेजा था। लिखा था, "सुरक्षा-दीवार खतरनाक है, भविष्य के बारे में लोग अधीर हैं, तुरन्त निर्णय लेना जरूरी है।" फिर जब अप्रैल 65 में, तत्कालीन राज्यपाल श्री ए० के० खोसला खंडवा आये तो उन्हें भी उसी आशय का एक तार हरसूद की ओर से दिया गया था।

16 अप्रैल, 1964 को खंडवा के जिलाधीश ने भी एक सभा बुलायी, जिसमें हरसूद के लोगों ने अनुरोध किया कि सुरक्षा-दीवार न बनायी जाय। आखिर में वह विचार छोड़ दिया गया। लेकिन इससे पहले 1961 के आरम्भ में, कंडवा के कलेक्टर श्री डी० जी० धावे ने एक आदेश जारी किया था कि यह सारा इलाका डूब में जाने वाला है, इसलिए हरसूद निवासियों को यहाँ कोई भी स्थान स्थायी रूप से आबंटित नहीं किया जायेगा। इससे वहाँ के निवासियों का और भी बुरा हाल हो गया।

हरसूद और आसपास के 254 गाँवों की पूरी एक पीढ़ी इसी मानस के साथ जीती आयी है कि उसके जीवन में कोई चीज स्थायी नहीं है। हरसूद गाँव के पूर्व सरपंच और नगरपालिका अध्यक्ष श्री दगड़ूलाल साँड कहते हैं, "पहली बार जब मैंने बाँध की बात सुनी तब मैं 22 साल का था, आज मैं 55 साल का हूँ, और अभी भी वह अस्थिरता ज्यों की त्यों बनी है।" सचमुच दगड़ूलाल जी का बेटा अब बीसी में है।

हरसूद निवासी श्री जगदीश बंसल, जो नगरपालिका कार्यालय में हेड-क्लर्क हैं, 1965 की दीवाली की याद करते हैं, जब अचानक खबर आयी कि 'हरसूद के लोगों को एक साल के भीतर-भीतर गाँव छोड़कर जाना होगा। उस वर्ष कई लोगों ने दीवाली से पहले घर की लिपाई-पुताई भी नहीं की। श्री बंसल के पिताजी इसी चिंता के साथ मरे कि मेरे बाल-बच्चे पुरखों का घर छोड़कर न जाने कहाँ चले जायेंगे। अब ये खुद भी यही बात सुन रहे हैं। इनके छोटे बच्चों ने भी इनसे यही सुना है। जो भी हो, लोगों के मन में अब पक्का-सा हो गया था कि परियोजना पर अमल शायद ही होगा, क्योंकि 1969 से 1979 तक सरकार बिलकुल चुप हो गयी थी, बाँध का काम कुछ भी आगे नहीं बढ़ा था। पर 1979 के बाद स्थिति फिर गरम हुई : कार्यालय बने और सरकारी अधिकारी आने-जाने लगे। 1983 में घर-घर का सर्वेक्षण किया गया।

अधिकारियों ने लोगों से कहा कि 1986 से घर खाली करने के लिए वे तैयार रहें।

अशोक अग्रवाल, जो हरसूद में एक प्रिंटिंग प्रेस चलाते हैं, हरसूद में श्री सुशीलचन्द्र वर्मा के आगमन की याद करके कहते हैं, "वर्मा साहब ने कहा था कि 1986 में हरसूद शहर पानी में डूबने वाला है।" वेटरनरी एक्सटेंशन आफीसर और प्रभारी बी० डी० ओ० डॉ० कंझरकर सरकार के रवैये पर बड़े खफा नजर आते थे। कहा कि "कुछ तो ठोस काम होना चाहिए, सरकार को निश्चय करना चाहिए कि क्या करना है और क्या नहीं। इस वक्त सारे लोग अधर में लटक रहे हैं। न सरकार आगे बढ़ रही है, न यहाँ के लोग ही कुछ कर रहे हैं।" परस्पर विरोधी बातों से, अफवाहों से लोगों की परेशानी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

पंचायत विस्तार अधिकारी श्री आर० बी० धोके कहते हैं, "इस इलाके में भूकंप की सम्भावना के बारे में दोनों तरह की बातें सुनने में आ रही हैं। सरकार क्या कहती है? जनता तो बिलकुल अँधेरे में है। यह भी सुनने में आता है कि रेलवे विभाग ने रेलवे लाइन को यहाँ से बदलने के लिए 2 करोड़ रुपये की पहली किस्त मंजूर कर दी है। लोग कुछ भी नहीं जानते कि यह सब क्या हो रहा है।" उनकी माँग थी कि एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित होनी चाहिए, सभी शंकाओं-आशंकाओं का समाधान होना चाहिए और सही हालत साफ बता देना चाहिए। जनता को अपनी बात कहने का, जरूरत पड़े तो विरोध प्रदर्शित करने का अवसर मिलना चाहिए। एक ओर पंचायती राज कायम करने की बात करते हैं, दूसरी ओर पंचायतों से इतना परदा क्यों? पंचायतों को नर्मदा के बाँध की न कोई जानकारी दी जाती है, न उनसे बात तक की जाती है। अधिकारियों ने एक ठीक और व्यावहारिक योजना पेश की होती तो ऐसी परेशानी पैदा न हुई होती। सरकार की चुप्पी देखकर तो लोगों की चिंता बढ़ती है। सरकार ने अभी तक सार्वजनिक तौर पर कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा है कि प्रभावित होने वाले लोगों को क्या-क्या मदद दी जायगी और कितना-क्या मुआवजा दिया जायगा। हम लोकतंत्र में जी रहे हैं। हर नागरिक को विस्तृत रिपोर्ट जानने का हक है। राज्य सरकार के प्रकाशन विभाग को हिन्दी में वह रिपोर्ट छापकर लोगों में बाँटना चाहिए। उससे लोगों का मन आने वाली परिस्थिति का सामना करने के लिए पहले से तैयार होगा।

बड़केश्वर गाँव के कुछ लोगों का कहना है कि "सरकार के अनिश्चय के कारण हम अधमरे-से हो गये हैं।" यह सही है कि हरसूद और बालदी प्रखंडों के कुल 146 गाँवों के 75000 से ज्यादा लोगों के बीच, जो प्रभावित होने वाले हैं, कोई नये काम नहीं हुए हैं। बालदी प्रखंड के 97 गाँवों में से 25 में एक भी प्राथमिक शाला नहीं है। बालदी प्रखंड में जंगल-ही-जंगल हैं, गाँव दूर-दूर फैले हुए हैं। गाँव वालों ने कहा कि इस प्रखंड में 25 स्कूल हैं, पर सब कागजों पर हैं।

सरकारी तंत्र भी रुका पड़ा है, इसका एक सबूत यह है कि चार साल से प्रखंड अधिकारियों के पास एक भी वाहन नहीं है। एक जीप मंजूर की गयी है, लेकिन वह कहीं और काम आ रही है। पर ड्राइवर का वेतन प्रखंड कार्यालय दे रहा है। बी० डी० ओ० से जब पूछा कि आप गाँवों में कैसे जाते हैं, तो बड़ी मायूसी के साथ बोले, "बैलगाड़ी से जाते हैं। कभी-कभी ठेकेदारों से या लोगों से मोटरसाइकिल पर लिफ्ट देने को कहता हूँ।"

यहाँ यातायात का मुख्य साधन बैलगाड़ी है। सड़क के किनारे के कुछ गाँवों में बस सेवा

उपलब्ध है। कई सड़कों पर बारिश के मौसम में आना-जाना बिल्कुल न के बराबर होता है। लोगों की माली हालत भी बड़ी खराब है। बालदी के बी० डी० ओ० श्री एम० एल० यादव के शब्दों में, "सरकारी कागजों में हम चाहे जो लिख लें, दरअसल मुश्किल से 40 प्रतिशत लोग ही हैं जो गरीबी रेखा से ऊपर हैं और 17 गाँवों की हालत तो बहुत ही खराब है। आदिवासी-बहुल गाँवों में तो गरीबी रेखा से ऊपर वाले 20 प्रतिशत से ज्यादा नहीं हैं।

नमक और मिर्च के साथ ज्वार या बाजरे की रोटी यहाँ के लोगों का मुख्य आहार है। चावल या गेहूँ खरीदने की शक्ति इनमें नहीं है। कुकढाल गाँव के 80 और दरकाली गाँव के 50 घरों में से मुश्किल से 2-3 घर ही ऐसे हैं, जो चावल या गेहूँ खा पाते हैं। मध्य प्रदेश के दूसरे हिस्सों से बिल्कुल विपरीत यहाँ के लोग इतने गरीब बना दिये गए हैं कि मेहमानों को कुछ भी खिलाना-पिलाना इनके लिए सम्भव नहीं है।

कई गाँवों में पीने के पानी की व्यवस्था नहीं है। कुएँ सूख जाते हैं। नर्मदा से या दूसरे गाँवों के कुएँ से पानी लाने के लिए लोग बैलगाड़ी ले जाते हैं। कुछ समय पहले कुछ हैंडपंप लगाये गये थे, लेकिन वे खराब हो गये। फिर उनकी मरम्मत नहीं करायी गयी।

दोनों प्रखंडों में उद्योग की स्थिति

	हरसूद	बालदी
खेतिहर	13136	7831
खेतिहर मजदूर	7379	6171
घरेलू उद्योग	327	456
अन्य	2152	1476
कुल	22994	15934

स्रोत : बी० डी० ओ० कार्यालय।

इन दोनों प्रखंडों में एक-तिहाई के करीब प्रौढ़ बेजमीन खेतिहर मजदूर हैं। लेकिन उन्हें पूरे समय काम नहीं मिलता। खेती के सिवा वे और कोई काम नहीं जानते। कोई निजी उद्योग वहाँ कदम रखना नहीं चाहता, क्योंकि 'डूब' का डर है। श्रम-प्रधान कोई विकास कार्यक्रम भी चालू नहीं किया गया। सरकारी अधिकारी भी मानते हैं कि यहाँ के लोगों को बहुत कष्ट सहना पड़ा है, क्योंकि सरकार यहाँ अधिक धन लगाने को तैयार नहीं है। क्योंकि इलाका डूबने वाला है। उपेक्षित खेती भी धीरे-धीरे और भी कमजोर हो चली है। ऐसे में भला खेती भी कितने श्रमिकों को रोजगार दे पायेगी ?

किसान अपने मजदूरों को निर्धारित मजदूरी दे नहीं पाते हैं। क्योंकि सारे इलाके की खेती की माली हालत पिछड़ी हुई है। बँधुआ प्रथा जारी है। अमीरों के घर गरीब लोग रोजाना एक या डेढ़ किलोग्राम बाजरे या ज्वार पर साल-भर काम करते हैं। कुछ को भोजन के साथ कुछ नकद पैसा भी मिल जाता है। जो अनाज दिया जाता है, वह अकसर अनकुटा होता है। श्रमिकों को उसे अपने घर में कूटना पड़ता है। बाहर वालों को लगेगा कि यहाँ भयानक शोषण हो रहा है। लेकिन असलियत यह है कि किसान इससे ज्यादा कुछ कर नहीं सकता। उत्पादन बहुत कम होता जा

रहा है, आय ज्यादा हो नहीं पाती। बस, किसी तरह किसान और मजदूर गाड़ी खींच रहे हैं। बे-जमीन श्रमिकों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने अपनी योजना में अधिगृहीत होने वाली खेती की जमीन पर प्रति हेक्टेयर 10000 रुपये का मुआवजा देने का प्रावधान किया था। लेकिन सरकारी तंत्र की जड़ता के कारण गरीबी बढ़ रही है और छोटे और सीमांत किसान बड़े जमींदारों के हाथ अपनी जमीन बेच देने को मजबूर हो रहे हैं। यह बात सरकारी कागजात में नहीं मिलेगी। लेकिन गाँव में जायें, लोगों से बातें करें, आँख और कान खुले रखें तो यह सचाई साफ दिखाई देगी। कई गाँवों में 80-90 प्रतिशत तक खेती की जमीन एक-दो घरों के हाथ में आ गयी है। और यह हाल इन्हीं दिनों में हुआ है।

बैंक के दरवाजे भी बंद

भूमि विकास बैंक ने यहाँ लोगों को कर्जा देना बंद कर दिया है। वे नर्मदा विकास प्राधिकरण से ऐसा प्रमाण-पत्र लाने को कहते हैं, जिसमें लिखा हो कि यह इलाका अगले 15 साल तक डूब में नहीं आने वाला है। प्राधिकरण ऐसा प्रमाण-पत्र दे नहीं सकता। हरसूद के भूमि विकास बैंक के एक अधिकारी ने कहा, "ऊपर के अधिकारियों से हमें ऐसे ही आदेश मिले हैं।" वे नेशनल बैंक फार एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट का नाम लेते हैं। यह भी सुना कि हरसूद का स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भी डूब वाले इलाके के लिए आर्थिक मदद नहीं दे रहा है। इस बैंक के मैनेजर का कहना है, "मदद बंद करने के लिए ऊपर से तो कोई आदेश नहीं है, लेकिन सचाई यह है कि सभी व्यापारिक बैंक यहाँ पैसा देने से हिचकते हैं, क्योंकि यह सब तो डूब जायेगा न।"

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत कर्जे और अनुदान की मंजूरी दी जाती है। पर उस पर अमल नहीं होता। बैंकों के पास फील्ड स्टाफ नहीं है। हाल में, बालदी के बैंक ऑफ इण्डिया को निर्देश मिला था कि जो भी व्यक्ति जिस किसी भी काम के लिए कर्जा माँगने आये, उसे 2500 रुपये का कर्जा दिया जाय। इसका कारण यह हो सकता है कि बालदी और उसके आस-पास के ग्यारह गाँव पहले चरण में डूबने जा रहे हैं। तो शायद लोगों के क्रोध को शांत करने के लिए बैंकों से पैसा बाँटने को कहा गया हो। इस बारे में बैंक ऑफ इंडिया के मैनेजर का कहना है कि "इस पैसे की वसूली के बारे में बैंक को परेशान होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि जब सारा इलाका डूबने वाला हो तो धन लौटाने की जिम्मेदारी तहसीलदार की है।" अगर ऐसी बात है तो फिर दूसरे गाँवों को पैसा देने में इतनी झिझक क्यों है?

वनों पर निर्भरता

खेती की हालत खस्ता होने के कारण लोगों के लिए जंगल का ही सहारा रह जाता है। बालदी प्रखंड के बहुत से गाँव वन-क्षेत्र में बसे हैं। ये पूरी तरह जंगलों पर ही निर्भर हैं। खुद के खाने और बेचने के लिए जंगल के उत्पादों को लोग जमा करते हैं। बसंत में महुआ फूल और बीज चुनकर रखते हैं। टमरू, चिरौंजी, आँवला, बेर, शहद और कई तरह की जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करके साप्ताहिक हाट में बेचते हैं। सरकार ने गोंद (खासकर 'धावडा' किस्म की, जो यहाँ की विशेष चीज है) इकट्ठा करने पर अगले 15 साल तक पाबंदी लगा दी है ताकि ये पेड़ ठीक से पनप सकें। फिर भी मजबूरी में लोग उसे एकत्र कर ही रहे हैं और बेच रहे हैं। गोंद के

लिए पेड़ों को बड़े बुरे तरीके से छेदते हैं। ज्यादा गोंद मिल जाय, इसके लिए कई जगह गहरे घाव कर देते हैं, जिससे पेड़ की उम्र घट जाती है। गोंद के पेड़ दूर-दूर तक फैले हुए हैं। उनसे गोंद लाना बड़ा कठिन काम है। तिस पर इससे आमदनी भी खास होती नहीं है। फिर भी निपट गरीबी की वजह से उन्हें यह काम करना पड़ता है। एक तेन्दू पत्ती के सिवा दूसरी किसी भी गौण वन उपज की बिक्री की ठीक व्यवस्था यहाँ नहीं है।

वन विभाग में दिहाड़ी पर लोगों को काम पर रखा जाता है। गरमियों में लोग 25-30 दिन तेंदू पत्ती इकट्ठा करने में खूब व्यस्त रहते हैं। बस, वह समय बीता और फिर सामने बेरोजगारी के लम्बे दौर।

'निस्तार' हक

इस इलाके में लोगों को वनों से निस्तार, रियायतें और कुछ हक प्राप्त हैं। इसमें उनकी अधिकांश बुनियादी जरूरतें आ जाती हैं। उन्हें जंगल से जलावन का बोझा, फल, पत्ते, छाल, जड़ें, छप्पर की घास, जड़ी-बूटियाँ, बाड़ लगाने की चीजें बिना पैसे दिये ले जाने और सूखी चीज़ों को मामूली दाम चुका कर बाहर लाने की इजाजत है। मकान बनाने के लिए बाँस और छोटी टहनियों तथा खेती के औजारों के लिए लकड़ी उन्हें सस्ते दामों पर निस्तार डिपो से मिल जाती है। जंगल में गाय, बैल, भैंस चराने की इजाजत है। यहाँ के बहुत सारे लोग इन्हीं रियायतों पर जिंदा हैं।

हरसूद : एक ठहरा हुआ शहर

हरसूद भी कभी एक छोटा-सा गाँव था। कहानी है कि परमार वंश के देवपाल देव राजा ने सन् 1218 में यहाँ एक सुंदर मंदिर और तालाब का निर्माण किया। उस समय यह हर्षपुर के नाम से जाना गया।

राज्यों के पुनर्गठन के समय यह पूर्वी निमाड़ जिले की तहसील वारसूद का मुख्यालय था। 1981 की जनगणना में हरसूद को नोटीफाइड एरिया का दर्जा मिला और बाकायदा इसे शहर बना दिया गया।

लेकिन शहर का ढाँचा इसे कभी नहीं मिला। पूरे शहर में बस इधर-उधर कुछ कच्ची-पक्की सड़कें हैं। सड़कों पर बिजली का भी प्रबंध नहीं है। शहर की आमदनी है 5 लाख जिसमें से 3 लाख तो कर्मचारियों के वेतन पर चली जाती है। बचे 2 लाख किसी तरह पीने के पानी के प्रबंध पर और दयनीय होते जा रहे शहर के थोड़े-बहुत रख-रखाव पर खर्च हो जाते हैं। पिछली बार 82-86 में हरसूद नगरपालिका को सरकार से 3.37 लाख की सहायता मिली थी और एक लाख का ऋण और यह सब भी एक उस मंत्री महोदय के प्रभाव के कारण हुआ जो इस इलाके से हैं।

लेकिन हरसूद इतना पिछड़ा, इतना दयनीय पहले नहीं था। एक जमाने में हरसूद अनाज और कपास की प्रसिद्ध मंडी की तरह था। हर साल कोई 2 करोड़ रुपये की रुई इस मंडी से

जाती थी। लेकिन धीरे-धीरे यह सब ढहता गया है। अब तो हरसूद डूबेगा या नहीं इस दुविधा में डूबा हुआ है।

बिना डूबे डूब गये

ऐसा नहीं है कि विकास की गतिविधियाँ सिर्फ सरकार ने रोक ली हैं। लोग खुद भी यही कर रहे हैं। घर-बार, दुकान-व्यापार और खेती-बाड़ी में लोग कितनी भी जरूरत हो आज पैसा लगाने से डरते हैं तभी तो बड़केश्वर गाँव के लक्ष्मण सिंह की आटा चक्की एक छप्पर के नीचे चल रही है। उनके पास पैसा है लेकिन दुकान में पैसा कौन लगाए ? यह तो डूब जायेगी। लोग खेती के लिए कुएँ तक बनाने से कतराते हैं। बरसों से मकानों में कोई सुधार, कोई विस्तार नहीं करवा रहे हैं। सन् 83 के बाद तो जैसे ऐसी सब गतिविधियों को बिलकुल लकवा मार गया है क्योंकि तभी तो नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने घोषित किया था कि 83 के बाद बने किसी भी निर्माण कार्य का मुआवजा नहीं मिलेगा।

सकतापुर गाँव की एक सभा में किसी ने कहा था, "न जाने कितने सालों से हम सुनते आ रहे हैं कि यह इलाका डूबेगा। अभी तक तो डूबा नहीं लेकिन बिना डूबे ही हमें डुबो दिया गया है।"

योजना बनाने में समन्वय का अभाव

विश्व बैंक की मदद से 1980 से चलाये गये खेती विकास कार्यक्रम (ट्रेनिंग एंड विजिट-टी० वी) के अंतर्गत हरसूद प्रखंड भी था। यह कार्यक्रम 1985 के अंत तक चला। योजना के अधीन 25 अतिरिक्त पद बनाये गये, लेकिन प्रगति संतोषजनक नहीं थी। कुल 42147 हेक्टेयर खेती में से सिर्फ 3812 हेक्टेयर को सिंचाई सुविधा मिली। 3112 सिंचाई कुओं में से 391 किसी काम के नहीं रहे। हरसूद प्रखंड के खेती विस्तार अधिकारी श्री तोमर का कहना है कि टी० वी० योजना आयी जरूर है, पर सिंचाई सुविधा में खास प्रगति नहीं हुई। जो चीजें इसमें जुटानी थीं उनकी आपूर्ति का कोई प्रावधान ही नहीं था। सबके मन में यही बात रही है कि सारा इलाका तो डूब में जाने वाला है। कुल मिलाकर टी० वी० योजना पूरी तरह विफल हुई। शक्ति और धन की कितनी बड़ी बर्बादी हुई।

निकम्मा ढाँचा

नर्मदा योजना एजेन्सी (ताजा नाम नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण) ने यहाँ सन् 1979 में अपना कार्यालय बनाया था। इस वक्त भोपाल, खंडवा, खेरीघाट, सनावद, बड़वाह, बीर, हरसूद तथा बाँध के स्थान में कुल 3 चीफ इंजीनियर, 3 सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर, 8 एग्जीक्यूटिव इंजीनियर, 16 असिस्टेंट इंजीनियर नियुक्त हैं। अभी इस परियोजना में कुल 3500 लोग स्टाफ पर हैं। टाउनशिप का निर्माण पूरा हो गया है। ज्यादातर स्टाफ तवा परियोजना से स्थानांतरित होकर आया है। इनके हाथ में इस वक्त खास कोई काम नहीं है। इंजीनियर और कर्मचारी लगभग बेकार बैठे हैं। नर्मदा नागौर के एक बड़े अधिकारी ने कहा कि जो कुछ भी काम है, वह सिर्फ एक डिवीजन संभाल सकता है। पूरे स्टाफ का सालाना वेतन लगभग 5 करोड़ रुपया है।

अब तक इस परियोजना पर 200 करोड़ रुपये से ज्यादा खर्च हो चुका है। नर्मदा नागौर के अधिकारियों के अनुसार ओंकारेश्वर परियोजना के लिए एक सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर की नियुक्ति की गयी है और खेरी घाट में भी एक नया कार्यालय खुल गया है। महेश्वर परियोजना के लिए भी स्टाफ की नियुक्ति हो गयी है। लेकिन इन दोनों परियोजनाओं के लिए ऊपर से अनुमति मिलनी अभी बाकी है।

1979 में, हरसूद में एक पुनर्वास डिवीजन कार्यालय और उसके दो सब-डिवीजन कार्यालय (सं० 27 और 28) खोले गये थे। लेकिन नवंबर 1984 में सं० 28 के डिवीजन कार्यालय और सब-डिवीजन कार्यालय खंडवा में स्थानांतरित कर दिये गये। हरसूद में ही पुनर्वास कार्यालय होना चाहिए था। क्योंकि यह डूब क्षेत्र के बीचोंबीच की जगह है। अब प्रथम चरण में डूब में आने वाले गाँवों के लोगों को, होशंगाबाद जिले की हरदा तहसील के लोगों को भी, हर बात के लिए खंडवा तक जाना पड़ेगा। हरसूद की तुलना में यह बहुत दूर पड़ता है। उन लोगों की दिक्कतों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया है, जिन्हें बंकापलास या जबगाँव से 90 किलोमीटर दूर खंडवा जाना पड़ता है। इन दिनों बैंक लोगों से हर काम के लिए डूब में न आने के बारे में नर्मदा विकास प्राधिकरण से प्रमाणपत्र लाने को कहने लगे हैं। इसलिए डूब में आनेवालों को तथा न आनेवालों को भी हर बात के लिए, उस प्रमाणपत्र को लाने के लिए खंडवा ही जाना पड़ता है।

हरसूद पुनर्वास कार्यालय : काम न करने का वेतन

हरसूद में बचे उप कार्यालय में एक असिस्टेंट इंजीनियर, 6 सब-इंजीनियर, 1 यू० डी० सी० 1 एल० डी० सी०, 2 चपरासी, 1 अमीन और 1 सिविल डिप्लोमावाले कर्मचारी हैं। दिहाड़ी पर 1 टाइमकीपर भी है। 69 साल के एक सेवा-निवृत पटवारी श्री राधाकृष्ण महोदय इस कार्यालय में 1982 से काम कर रहे हैं। वे अपनी उम्र से काफी बड़े दीखते हैं। मोटा चश्मा पहनते हैं और छड़ी लेकर चलते हैं। वे बस में आया-जाया करते हैं और सर्वेक्षण के काम से दूर-दूर तक जाते हैं। 1966 में हुए बालदी प्रखंड के 4 गाँवों के घर-घर सर्वेक्षण का काम उन्हीं की देखरेख में चला था। वह सर्वे पुनर्वास योजना तैयार करने के लिए किया गया था। क्लर्की का काम अस्थायी टाइमकीपर करता था। 6 जूनियर इंजीनियर बहुत ही कम दफ्तर में आते थे, वे यही कहते थे कि क्षेत्र में काम देखने जा रहे हैं। कार्यालय को एक मिनी बस दी गयी है, जो अकसर खराब रहती है : फिर, उस बिलकुल टूटी-फूटी सड़कों वाले ऊँचे-नीचे इलाके में वह यों भी किसी काम की नहीं है। इस कार्यालय का माहवार वेतन बिल 10,000 रुपये का है : अलग-अलग तरह के भत्तों के लिए 5000 रुपये और खर्च होते हैं। असिस्टेंट इंजीनियर मानते हैं कि "सचमुच हम लोग कुछ भी काम न करते हुए वेतन ले रहे हैं।"

परियोजना के अंतर्गत विभिन्न डिवीजनों और सब-डिवीजनों का काम कितना गड़बड़ है और अव्यवस्थित है इसका अंदाज इन बातों से लग सकता है :

1. डिवीजन नं० 8 और 14 का काम बाँध की नींव बनाने का था, पर ये इस वक्त सर्वेक्षण, माडल तैयार करने और बाँध स्थल पर सफेद लाइन खींचने का काम कर रहे हैं।

2. डिवीजन नं० 9 आवास कालोनी के निर्माण में लगा है।
3. सब-डिवीजन नं० 16 और 17 टाउनशिप में गैर-आवासीय इमारतों को बना रहे हैं। सब-डिवीजन नं० 16 भी टाउनशिप में सड़क बनाने में लगा है।
4. सब-डिवीजन नं० 1 के पास फिलहाल कोई काम नहीं है।
5. बिजलीघर वाले दो सब-डिवीजन अपने लिए आवासीय और कार्यालय इमारतें बना रहे हैं।
6. नहर वाला डिवीजन सर्वेक्षण में लगा हुआ है।
7. पुनर्वास के डिवीजन और सब-डिवीजनों के पास भी कोई काम नहीं है।

दूसरे डिवीजन और सब-डिवीजनों के बारे में इस वक्त कोई जानकारी नहीं है। पर इतना स्पष्ट है कि 'मानव-शक्ति' का बेहद दुरुपयोग हो रहा है।

स्टाफ सदस्यों में से कुछ के भ्रष्टाचार और गलत धंधे की अफवाहें जोरों पर हैं। उन आरोपों में कुछ सचाई भी हो सकती है। पामा खेड़ी क्षेत्र में, जहाँ डूब क्षेत्र का निशान लगाया जा रहा है, कुछ गाँव वालों ने बताया कि उन्हें मजदूरी तो चार दिन की ही दी जाती है पर दस्तखत 12 दिन के करने होते हैं। यह भी शिकायत है कि निर्धारित दर से मजदूरी नहीं दी जाती। ठेकेदार जूनियर इंजीनियर की सीधी देखरेख में काम करता है। वे बेचारे मजदूर इतना डरते हैं कि किसी से कुछ बोल भी नहीं पाते हैं: काम छिन जाने का डर है। फिर सीमेंट, पेट्रोल और डीजल भी बाजार में बेच दिया जाता है। चर्चा के दौरान एक अधिकारी ने बताया कि "यह सब तो बड़े कारनामे का एक हिस्सा ही है।" परियोजना वाहनों का दुरुपयोग होता है। परियोजना के ट्रकों में ठंडे पेय की खाली बोतलें अकसर नर्मदा-नागौर से इंदौर ले जाई जाती है। कहा जाता है कि यह काम असिस्टेंट इंजीनियर की सम्मति से होता है। इस सुदूर इलाके में हर कोई 'लिफ्ट' माँगता ही है, लेकिन 150 किलोमीटर दूर तक इतने सारे क्रेटस के लिए यूँ ही कोई कैसे 'लिफ्ट' दे देगा ?

डूब और पुनर्वास

हरसूद क्षेत्र के भूमि-अधिग्रहण का काम देखने वाली नर्मदा प्लानिंग एजेंसी की ताजा सूचना के अनुसार भूमि-अधिग्रहण का पहला चरण 1985-86 से शुरू होने को था। बताया गया था कि 1989-90 तक सारा इलाका अधिगृहीत हो जायेगा। लेकिन डूब में आनेवाले इलाके में घूमते हुए आपको अधिग्रहण की कार्रवाई का कोई संकेत नहीं मिलेगा। अंतिम अधिग्रहण-सूचना अभी तक उन 12 गाँवों को जारी नहीं की गयी है जिनका अधिग्रहण प्रथम चरण में होना है। भूमि-अधिग्रहण कानून के अनुसार गाँव वाले नोटिस जारी होने के बाद 3 साल तक स्थगन आदेश प्राप्त कर सकते हैं। मध्य प्रदेश सरकार के नियम के अनुसार डूबने से तीन साल पहले ही मुआवजा मिल सकता है।

पहले चरण में अधिगृहित होने वाले 12 गाँवों की आबादी और घरों की संख्या में बड़ी गड़बड़ी है। श्री सुशीलचंद्र वर्मा की रिपोर्टनुमा पुस्तक 'ह्यूमन री-सेटलमेंट इन लोअर नर्मदा बेसिन' में दिये गये आँकड़े हरसूद पुनर्वास सब-डिवीजन आफिस के आँकड़ों से अधिक हैं। बार-बार पूछे जाने पर जिस अधिकारी ने मुझे 254 गाँवों के आँकड़े दिये, उसने बताया कि "हम तो इसी

के आधार पर काम कर रहे हैं।" इससे पता चलता है कि विभिन्न स्रोतों के बीच कोई तालमेल नहीं है। कम-से-कम पुनर्वास सब-डिवीजन कार्यालय से तो अपेक्षा है कि उसके पास सही और अद्यतन आँकड़े होने चाहिए।

नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष श्री वर्मा की रिपोर्ट बहुत अच्छी है। उसमें पुनर्वास नीति के बारे में तथा ठीक पुनर्वास के लिए जरूरी कदमों के बारे में बड़ी अच्छी जानकारी दी है। इस पुस्तक का प्रकाशन मध्य प्रदेश सरकार के नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने जुलाई 1986 में किया था। लेकिन लगता है खुद प्राधिकरण इसे पढ़ नहीं रहा। हरसूद में पुनर्वास दफ्तर में काम करने वाले लोगों को इस पुस्तक के बारे में कोई जानकारी नहीं है। सब-डिवीजन 27 के असिस्टेंट इंजीनियर और नर्मदा नागौर के दफ्तर में इसी काम में लगे लोगों ने इस पुस्तक को देखा तक नहीं है।

अधिकारियों की मूल कल्पना उन विस्थापित 12 गाँव वालों को डूब क्षेत्र के पास के इलाके में ही बसाने की थी ताकि जलाशय के पानी से निकल आने वाली जमीन में ही वे खेती करके बस सकें। इसी हिसाब से सरकार ने इन गाँव वालों को जमीन आवंटित की। लेकिन विस्थापितों को वह जगह पसंद नहीं आयी। इतने में सरकार ने भी ऐसी जमीन पर खेती की अपनी नीति बदल दी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि सरोवर के तट पर खेती करने से भूक्षरण होगा और सरोवर में साद भरने की मात्रा बढ़ जायेगी। एक असिस्टेंट इंजीनियर ने कहा कि अब हम इन लोगों को दूसरी जगह बसाने की तैयारी कर रहे हैं, लेकिन यह नहीं बताया कि वह जगह कौन-सी है।

दूसरी ओर, 16 अप्रैल, 1986 को, प्रथम चरण में डूबने वाले 12 गाँवों के सरपंचों को स्थानांतरण पर चर्चा करने के लिए खंडवा बुलाया गया था। बड़केश्वर गाँव के सरपंच ने कहा, "बैठक में बताया गया कि बड़केश्वर तथा बंकापलास गाँव वालों को जाटम जाना होगा, लेकिन वह जगह अच्छी नहीं है। हम देवास जिले के शिरकिया गाँव में जाने को तैयार हैं, क्योंकि वहाँ सारी सुविधाएँ मौजूद हैं।" इसी से पता चलता है कि अधिकारी कितनी उलझन में हैं।

लगभग 30-50 गाँवों के लोगों को गुजरात-मध्यप्रदेश सीमा में स्थित गांधी सागर बाँध के कमांड क्षेत्र में ले जाया गया था। वे वहाँ तीन दिन रहे, 5 गाँवों को देख आये। पर वहाँ का तजुरबा अच्छा नहीं रहा। सारे इलाके में पानी का जमाव है। सरोवर के पानी का स्तर घटने पर भी पानी का जमाव रुकता नहीं। फसलों को रोग लग जाते हैं।

नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के अनुसार (हरसूद शहर सहित) 254 गाँवों की कुल 80500 की आबादी और 91348 हेक्टेयर जमीन डूबने वाली है। प्राधिकरण ने इस वक्त केवल तीन ही डूब क्षेत्र हाथ में लिये हैं। कुछ गाँवों में आवास का इलाका डूबेगा, खेत नहीं, दूसरे कुछ गाँवों में खेत डूबेंगे, घर नहीं। जहाँ खेत डूब गये, लेकिन उन पर अवलंबित लोगों के घर नहीं डूबे, वहाँ उनको विस्थापितों की सूची में लिया नहीं गया है। ऐसे लोगों की दुर्दशा का अंदाज लगाना कठिन नहीं है। साथ की तालिका में डूब में आने वाले गाँव, भूमि, जनसंख्या और क्षेत्र का वितरण दिया गया है।

तहसीलवार डूब का विवरण

तहसील	ग्राम संख्या	कुल आबादी (1981)	प्रभावित लोग	गाँव का क्षेत्र (हेक्टेयर)	डूब में आने वाला क्षेत्र
खंडवा	21	10745	6241	9932	4420
हरसूद	145	73731	59838	86221	54762
हरदा	48	13584	1290	24638	5847
कन्नौद	20	5117	1418	12076	2705
खातेगाँव	19	7868	—	8090	1598
	253	111045	68787	140957	69332
हरसूदनगर		11713	11713	1461	1461
		122758	80500	142418	70793

स्रोत : 'ह्यूमन री-सेटलमेंट इन लोअर नर्मदा बेसिन' पुस्तक से।

गाँव की भूमि के अलावा लगभग 35000 हेक्टेयर जंगल भी डूब में जाने वाला है। इस प्रकार कुल डूब क्षेत्र 90348 हेक्टेयर होगा।

डूब क्षेत्र का स्वरूप

तहसील	गैर आवासीय		आवासीय (गाँव)	
	पूरी डूब	आंशिक डूब	पूरी डूब	न डूबने वाला
खंडवा	6	15	13	8
हरसूद	63	83	117	29
हरदा	1	47	9	38
कन्नौद	2	18	7	13
खातेगाँव	—	19	—	19

स्रोत : 'ह्यूमन री-सेटलमेंट इन लोअर नर्मदा बेसिन'।

इस बारे में नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष ने अनेक सुझाव पेश किये हैं। लेकिन उनमें से बहुत से सुझाव कोरी बात ही रह गये हैं :

1. एक सुझाव यह था कि क्रमशः 847 फुट और 860 फुट के बीच डूबने वाले क्षेत्रों को बताने वाली रेखा खींची जाये। श्री वर्मा के अनुसार यह काम हो गया है, लेकिन असल में वह काम पामाखेरी क्षेत्र में तो हो रहा था और सब-डिवीजन नं० 27 के कार्यालय में बताया गया कि यहाँ सब-इंजीनियर पुनासा रेंज में इसे शुरू करने के काम में व्यस्त हैं।

2. एक और सुझाव था कि पुनर्वास कार्य को देखने के लिए सरकार को एक स्वतंत्र कक्ष स्थापित करना चाहिए और काम पूरा करने के लिए उसी कक्ष को जिम्मेदार बनाना चाहिए।

कक्ष में केवल आर्थिक मामलों के जानकार ही नहीं, समाजशास्त्री, नृतत्वशास्त्री आदि भी होने चाहिए। पर वैसा कक्ष अभी तक तो बना नहीं है।

3. यह भी कहा गया था कि 'पुनर्वास के काम में विस्थापितों की निश्चित भागीदारी की दृष्टि से ग्राम, तहसील और प्रखंड स्तरों पर सलाहकार समितियाँ बनायी जानी चाहिए।' लेकिन अभी तक ग्राम तथा प्रखंड स्तर की एक भी समिति नहीं बनी है। 25 अप्रैल, 86 को बालदी के बी०डी०ओ० ने बताया कि इस बारे में प्रखंड कार्यालय को सितंबर 1985 में एक निर्देश मिला था। लेकिन तब से कोई कार्रवाई हुई नहीं है। हरसूद के बी०डी०ओ० ने भी कहा कि प्रखंड स्तर की ऐसी कोई समिति नहीं बनी है और कह नहीं सकते कि तहसील स्तर की भी बनी है या नहीं।

हाँ, हाल में जिला स्तर की एक समिति जरूर बनायी गयी है और पिछले महीनों में उसकी दो बैठकें भी हुई हैं।

लोगों की भागीदारी हासिल करने के लिए नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने प्रथम चरण के 12 गाँवों में 'करुणा पुनर्वास' नामक एक तरीका अपनाया है। हर गाँव से दो-दो व्यक्तियों को चुनकर तीन दिन का एक प्रशिक्षण शिविर किया गया और उन्हें समझाया गया कि लोगों को कैसे मनाया जाय। हरसूद में लगे उस शिविर में प्राधिकरण के उपाध्यक्ष ने प्रमाण-पत्र दिये। सब कुछ हुआ पर उसके बाद कुछ नहीं हुआ।

म० प्र० कंसल्टेंसि (एम पी कोन) एक सरकारी संगठन है। इसने इन 254 गाँवों का घर-घर जाकर सर्वेक्षण किया है। 1983 में शुरू होकर 84 में काम पूरा हुआ। पर हरसूद शहर की रिपोर्ट के सिवा दूसरे किसी गाँव के बारे में कोई रिपोर्ट नहीं बनी है। जुलाई 86 के मध्य में जब एम पी कोन कार्यालय में पूछा गया तो बताया गया तालिकाएँ बनी हैं, संकलन का काम भी हो गया है, एकाध महीने में रिपोर्ट तैयार हो जायेगी और प्राधिकरण को दे दी जायेगी।

हरसूद शहर को स्थानांतरित करने के स्थान के बारे में 1983 से विवाद चल रहा है। सरकार ने हरसूद से 20 किलोमीटर दूर खंडवा सड़क के दायें किनारे चिनेरा का स्थान चुना था। लेकिन नगरवासी कहते हैं कि वह स्थान पथरीला और ऊबड़-खाबड़ है, भूमिगत पानी का स्तर बहुत नीचा है और बाँध के जलाशय में पानी पूरा भरेगा तब बस्ती में भी पानी आ सकता है। इसके बदले वे चिनेरा से 5 किलोमीटर और आगे खंडवा की ओर आशापुर जाना चाहते हैं लेकिन उसके लिए कुछ जंगल काटना होगा। इसलिए सरकार आशापुर के पक्ष में नहीं है। पुनर्वास के लिए जंगल का इलाका काम में लेने पर पाबंदी है। यों पाबंदी तो बाँध से जंगल डूबोने पर भी है। हरसूद वासियों ने इसी मामले को लेकर 15 फरवरी 1983 के दिन विरोध प्रदर्शन किया। पूरा शहर बन्द रखा गया।

एक छोटे व्यापारी श्री हनीफ पूछते हैं, "आप हमारी जमीन और जंगल सब ले रहे हैं और हमारे बसने के लिए थोड़ा-सा जंगल नहीं काट सकते?" उनकी दलील में दम है। हरसूद में जंगल विभाग का एक बड़ा डिपो था। डूब की आशंका से उसे आशापुर ले जाया गया। नर्मदा प्राधिकरण भी उस डिपो को आशापुर ले जाने के लिए राजी था पर लोगों के रहने के लिए वे चिनेरा पसन्द कर रहे हैं।

40 किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइन भी डूब में आयेगी। इसे बदलने का काम शुरू हो गया है। एक विशाल गोदाम बनाया गया और हरसूद स्टेशन के पास सामानों के ढेर लगे हुए हैं।

मुआवजे के बारे में लोग अँधेरे में हैं। 253 गाँवों और हरसूद शहर की कुल सम्पत्ति का दाम 187 करोड़ रुपये होगा जिसमें 45.38 करोड़ तो सरकार के हैं।

नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण ने 1983 में लोगों को 'नयी जमीन, नयी बस्ती और नयी जीवन शैली' का आश्वासन दिया था। पर आज तो डूब के खतरे से सारे लोग भयभीत हैं और डूबने से पहले ही सभी विकास गतिविधियाँ ठप्प हो गयी हैं। पहले से कोई व्यवस्थित योजना नहीं बन सकी है। 1983 से हर तरह के नये निर्माण पर रोक लगी हुई है।

लोग बिलकुल अँधेरे में हैं कि कब खाली करना है या सममुच जमीन डूबेगी या नहीं, उन्हें जगह बदलनी होगी या नहीं। उन्हें यह भी मालूम नहीं कि नयी जगह कौन-सी पसन्द की जायेगी, उनकी अपनी मनपसन्द जगह होगी या नहीं। उन्हें मिलने-वाले मुआवजे के बारे में भी उन्हें कुछ मालूम नहीं। इस तरह पूरा इलाका अधर में है।

असल में आशा यह की गयी थी कि बाँध बनने से जमीन समृद्ध होगी, लोगों का भला होगा, लेकिन अब वैज्ञानिक और पर्यावरण वाले बाँध से संभावित पर्यावरण-क्षति तथा बाँध की सक्षमता के बारे में चिंतित हो रहे हैं। बाँध निर्माण संबंधी बुनियादी ढाँचे के अंग के रूप में अनेक इमारतें खड़ी करने में सिंचाई विभाग ने अभी भी काफी बड़ी धनराशि खर्च कर दी है। इस काम में वन विभाग और रेलवे विभागों का भी हाथ है। लेकिन अजीब बात है कि यह सब खर्च केन्द्रीय सरकार से अंतिम स्वीकृति मिलने से पहले ही किया जा चुका है। बाँध बनेगा या नहीं, पर्यावरण विभाग हरी झंडी दिखायेगा या नहीं, बनेगा तो खुशहाली आयेगी या बर्बादी—लोग तो हर तरह से अधर में हैं। दो पीढ़ी पहले से चली आ रही दुविधा अब तीसरी पीढ़ी को भी मिल चुकी है।

अंग्रेजी में तैयार एक बड़ी रिपोर्ट से श्री ति० न० आत्रेय द्वारा प्रस्तुत

पर्यावरण कक्ष, गांधी शांति प्रतिष्ठान, 221, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2 द्वारा प्रकाशित। दिसंबर 1986। मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32। प्रकाशन सहयोग : गांधी शांति केन्द्र।

नर्मदा के इस काम में आपका सहयोग चाहिए।